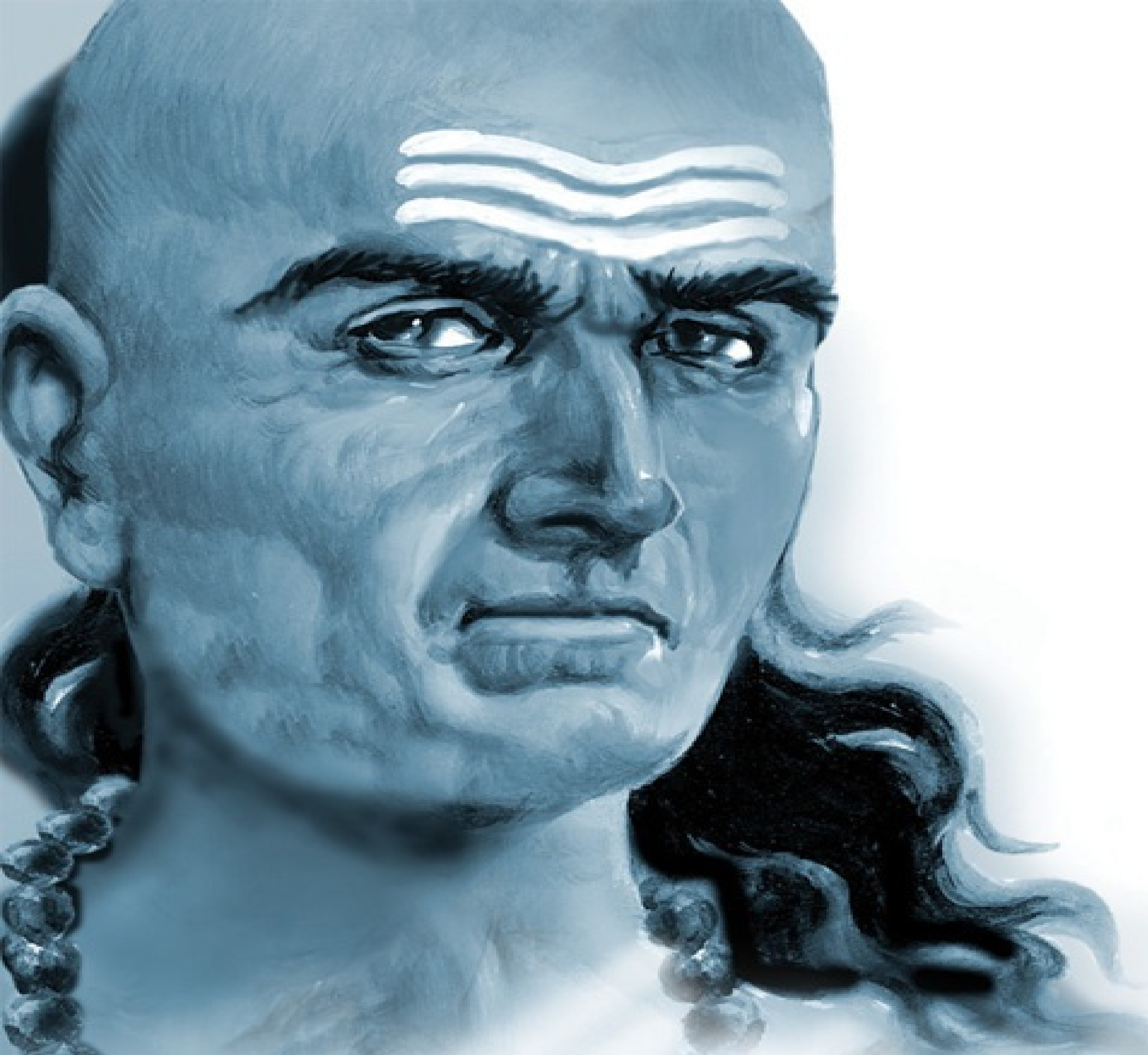

चाणक्य नीति

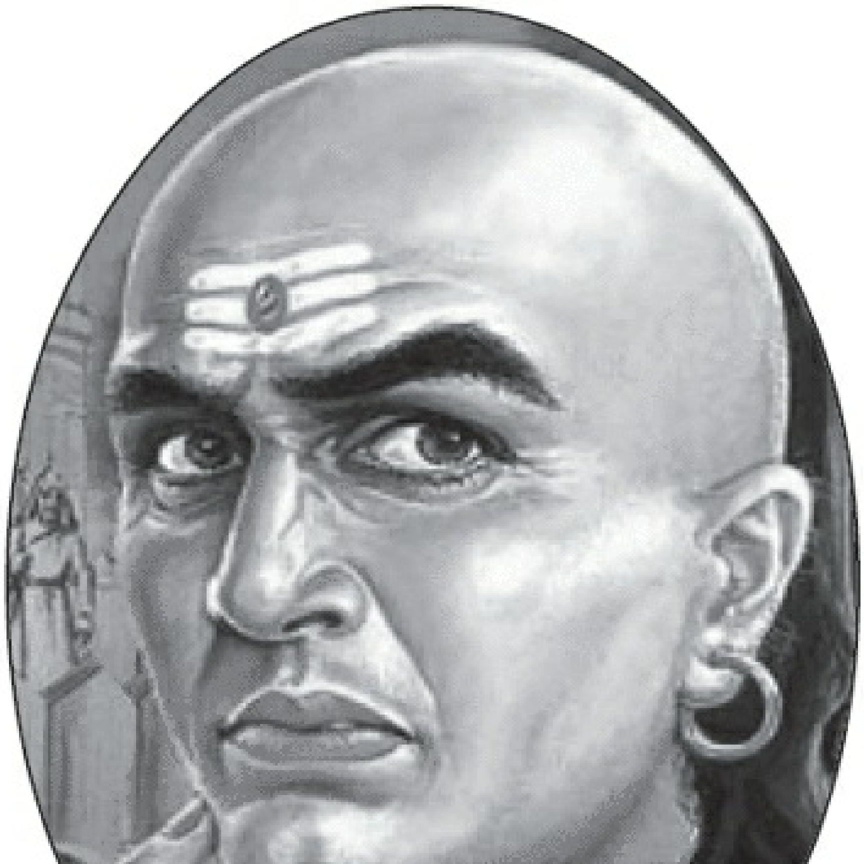

चाणक्य नीति

ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

अनुक्रम

अपनी बात

किंग-मेकर चाणक्य

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नौवाँ अध्याय

दसवाँ अध्याय

ग्यारहवाँ अध्याय

बारहवाँ अध्याय

तेरहवाँ अध्याय

चौदहवाँ अध्याय

पंद्रहवाँ अध्याय

सोलहवाँ अध्याय

सत्रहवाँ अध्याय

अपनी बात

विष्णुगुप्त चाणक्य अन्य बालकों से भिन्न एक असाधारण बालक थे। उनके पिता चणक एक शिक्षक थे। वे भी अपने पिता का अनुसरण करके शिक्षक बनना चाहते थे। उन्होंने तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजनीति और अर्थशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। इसके पूर्व वेद, पुराण इत्यादि वैदिक साहित्य का उन्होंने किशोर वय में ही अध्ययन कर लिया था। उनका 'चाणक्य नीति' ग्रंथ वैदिक साहित्य का ही निचोड़ है।

अध्ययन के दौरान उनकी कुशाग्र बुद्धि और तार्किकता से उनके साथी तथा शिक्षक भी प्रभावित थे इसी कारण उन्हें 'कौटिल्य' भी कहा जाने लगा। अध्ययन पूरा करने के बाद तक्षशिला विश्वविद्यालय में ही चाणक्य अध्यापन करने लगे। राजनीति के विद्यार्थी होने के कारण वे आरंभ से ही देशी-विदेशी राजनीति पर पैनी नजर रखते थे। इसी दौर में उत्तर भारत पर अनेक विदेशी आक्रमणकारियों की गिद्धदृष्टि पड़ी, जिनमें सेल्यूकस, सिकंदर आदि प्रमुख हैं। इधर चाणक्य के गृह राज्य एवं अड़ोस-पड़ोस के हालात भी ठीक नहीं थे। शासकों ने प्रजा पर अनावश्यक कर थोप रखे थे। जनता उनके बोझ तले पिसी पड़ी थी। इन सब परिस्थितियों ने चाणक्य को विचलित कर दिया। वे भारतवर्ष को एकीकृत देखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने तक्षशिला में अध्यापन-कार्य छोड़ दिया और राष्ट्र-सेवा का व्रत लेकर पाटलिपुत्र आ गए।

पाटलिपुत्र में जब उनका सामना राजा घनानंद से हुआ तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में जनता के कष्ट और राजा की बुराइयों को सामने रखा। चाटुकारिता-पसंद राजा घनानंद को यह सब नागवार गुजरा। चाणक्य दिमाग से जितने तेज थे, शक्ल से उतने ही कुरूप; उनकी शक्ल भी घनानंद को पसंद नहीं आई और उसने उन्हें राजमहल से बाहर निकलवा दिया। तब चाणक्य ने नंद वंश को समूल उखाड़ फेंकने की शपथ ली, जिसे उन्होंने चंद्रगुप्त की सहायता से पूरा किया।

चाणक्य का जीवन कठोर धरातल पर अनेक विसंगतियों से जूझता हुआ आगे बढ़ता है। कुछ लोग सोच सकते हैं कि उनका जीवन-दर्शन प्रतिशोध लेने की प्रेरणा देता है। लेकिन चाणक्य का प्रतिशोध निजी प्रतिशोध न होकर सार्वजनिक प्रतिशोध था। उन्होंने जनता के दुःख-दर्द को देखा और स्वयं सहा था। उसी की फरियाद लेकर वे राजा से मिले थे। घनानंद चूँकि प्रजा का हितैषी नहीं था, इसलिए चाणक्य ने उसे खत्म करने का प्रण किया।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त और बाद में उसके पुत्र बिंदुसार के मंत्री एवं विशेष सलाहकार के रूप में काम किया। लेकिन दुःखद बात यह रही कि वे बिंदुसार के एक मंत्री सुबंधु के हाथों धोखे से मारे गए।

उन्होंने 'चाणक्य नीति' जैसा नीतियों का एक अनमोल खजाना दुनिया को दिया। यह खजाना पाठकों की सेवा में अर्पित है। आशा है, इसे पढ़कर आप भी अवश्य आनंदित होंगे।

इसी आशा और विश्वास के साथ,

-महेश शर्मा

किंग-मेकर चाणक्य

चाणक्य को भारत के एक महान् राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री के रूप में जाना जाता है। उनके पिता चणक मुनि एक महान् शिक्षक थे। कहा जाता है कि चाणक्य का जन्म तक्षशिला या दक्षिण भारत में 350 ई-पू- के आसपास हुआ था। उनकी मृत्यु का अनुमानित वर्ष 283 ई-पूबताय श गया है।

चाणक्य को विष्णुगुप्त, वात्स्यायन, मल्लनाग, पक्षिलस्वामी। अंगल, द्रमिल और कौटिल्य भी कहा जाता है। कहा जाता है कि पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं-यह बात चाणक्य पर शत प्रतिशत सही साबित होती है। जरा इन बातों पर गौर कीजिए—

- जन्म के समय से ही चाणक्य के मुँह में पूरे दाँत थे। यह राजा या सम्राट् बनने की निशानी थी। लेकिन चूंकि उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था, इसलिए यह बात सच नहीं हो सकती थी। इसलिए उनके दाँत उखाड़ दिए गए और यह भविष्यवाणी की गई कि वे किसी और व्यक्ति को राजा बनवाएँगे और उसके माध्यम से शासन करेंगे।
- चाणक्य में जन्मजात नेतृत्वकर्ता के गुण मौजूद थे। वे अपने हमउम्र साथियों से कहीं अधिक बुद्धिमान और तार्किक थे।
- चाणक्य कटु सत्य को कहने से भी नहीं चूकते थे। इसी कारण पाटलिपुत्र के राजा घनानंद ने उन्हें अपने दरबार से बाहर निकाल दिया था। तभी चाणक्य ने प्रतिज्ञा थी कि वे नंद वंश को जड़ से उखाड़ फेंकेंगे।
- अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए चाणक्य ने बालक चंद्रगुप्त को चुना, क्योंकि उसमें जन्म से ही राजा बनने के सभी गुण मौजूद थे।
- चंद्रगुप्त के कई दुश्मन थे। राजा नंद भी उनमें शामिल था। उसने उन्हें कई बार विष देकर मारने की कोशिश की। अतः चंद्रगुप्त की विष-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए चाणक्य ने उसे भोजन में थोड़ा-थोड़ा विष मिलाकर देना आरंभ कर दिया।
- चंद्रगुप्त को भोजन में विष दिए जाने की बात ज्ञात नहीं थी, इसलिए एक दिन उसने अपने भोजन में से थोड़ा अपनी पत्नी को भी दे दिया, जो नौ माह की गर्भवती थी। विष की तीव्रता वह नहीं झेल पाई और काल-कवलित हो गई। लेकिन चाणक्य ने उसका पेट चीरकर नवजात शिशु को बचा लिया।
- वह शिशु बड़ा होकर एक योग्य सम्राट् बिंदुसार बना। उसका सुबंधु नाम का एक मंत्री था। सुबंधु चाणक्य को फूटी आँखों पसंद नहीं करता था। उसने बिंदुसार के कान भरने शुरू कर दिए कि चाणक्य उसकी माता का हत्यारा है।
- तथ्यों को जाँचे-परखे बगैर बिंदुसार चाणक्य के विरुद्ध खड़ा हो गया। लेकिन जब उसे सच्चाई ज्ञात हुई तो वह बहुत लज्जित हुआ और अपने दुर्व्यवहार के लिए चाणक्य से क्षमा माँगी। उसने सुबंधु से भी कहा कि जाकर चाणक्य से क्षमा माँगे।
- सुबंधु बड़ा कुटिल व्यक्ति था। चाणक्य से क्षमा माँगने का बहाना करते हुए उसने धोखे से उनकी हत्या कर दी। इस प्रकार, राजनीतिक षड्यंत्र के चलते एक महान् व्यक्ति के जीवन का अंत हो गया।

शिक्षा

चाणक्य के पिता चणक मुनि एक शिक्षक थे, इसलिए शिक्षा का महत्त्व वे अच्छी तरह से समझते थे। अपने पुत्र को उन्होंने अच्छी शिक्षा प्रदान की। कम उम्र में जब बच्चे बोलना भी ठीक से शुरू नहीं कर पाते हैं, चाणक्य ने वेद का अध्ययन आरंभ कर दिया था। अल्पकाल में ही वेदों में पारंगत होकर चाणक्य का झुकाव राजनीति की ओर हुआ। जल्दी ही वे राजनीति की बारीकियों को समझने लगे। वे समझ गए कि विरोधियों के खेमे में अपने आदमी कैसे शामिल किए जाते हैं और दुश्मनों की जासूसी कैसे की जाती है। इसके अलावा उन्होंने अर्थशास्त्र एवं हिंदू शास्त्रें का भी गहन अध्ययन किया और बाद में उन्होंने 'चाणक्य नीति', 'नीतिशास्त्र' एवं 'अर्थशास्त्र' जैसे महान् कालजयी ग्रंथों की रचना की।

तक्षशिला (अब पाकिस्तान में) उन दिनों भारत के उच्च शिक्षा-संस्थानों में से एक था, जहाँ चाणक्य ने

व्यावहारिक और प्रायोगिक ज्ञान हासिल किया। वहाँ के शिक्षक उच्च कोटि के विद्वान् होते थे, जो प्रायोगिक और व्यावहारिक रूप से छात्रें को शिक्षित करते थे। वहाँ विज्ञान, आयुर्वेद, दर्शन, व्याकरण, गणित, अर्थशास्त्र, ज्योतिष-विद्या, भूगोल, खगोल-शास्त्र, कृषि-विज्ञान, औषध-विज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

विद्यार्थी जीवन में चाणक्य की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि लोग उन्हें 'कौटिल्य' और 'विष्णुगुप्त' आदि अनेक नामों से भी पुकारते थे।

तक्षशिला में शिक्षा समाप्त करके चाणक्य वहीं शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। वे विद्यार्थियों के आदर्श थे। उनके एक आदेश पर विद्यार्थी सबकुछ करने को तैयार हो जाते थे। उनके दो शिष्यों-भद्रभट्ट और पुरुषदत्त का उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है। चाणक्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में उनका अहम योगदान बताया गया है। यह भी कहा जाता है कि वे दोनों चाणक्य के जासूस थे और उनके शत्रुओं के बारे में जानकारियाँ जुटाकर उन तक पहुँचाया करते थे।

इसी दौरान अपने सूत्रें से चाणक्य को ज्ञात हुआ कि यूनान का महान् सम्राट् सेल्यूकस भारत के कमजोर शासकों पर आक्रमण करने वाला है। इस प्रकार भारत की एकता पर खतरा मँडरा रहा था। इस अराजक स्थिति का लाभ उठाते हुए पाटलिपुत्र के कुटिल शासक घनानंद ने अपनी प्रजा का शोषण करना आरंभ कर दिया। विदेशी आक्रमण से लोहा लेने की आड़ में उसने जनता पर तरह-तरह के कर थोप दिए। एक ओर विदेशी हमलावर कमजोर राज्यों पर टकटकी लगाए थे तो दूसरी ओर पड़ोसी देश अपने कमजोर पड़ोसियों को हथियाने की फिराक में थे। चाणक्य विदेशी और भीतरी-दोनों खतरों पर नजर रखे थे। इस उथल-पुथल ने उनकी रातों की नींद छीन ली और उन्होंने तक्षशिला को त्यागकर पाटलिपुत्र लौटने का इरादा कर लिया।

पाटलिपुत्र में

पाटलिपुत्र (वर्तमान नाम पटना) का इतिहास राजनीतिक रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। दिल्ली की तरह यह भी कई बार बसा और उजड़ा है। चीन के सुप्रसिद्ध यात्री फाह्यान ने 399 ई-पू- पाटलिपुत्र की यात्र की थी और इसे एक संपन्न एवं प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर नगर कहा था। उसी समय एक अन्य चीनी यात्री ह्नेनसांग ने इसका वर्णन रोड़े, पत्थर और ध्वंसावशेष के नगर के रूप में किया था। शिशुन्नवंशी ने गंगा के दक्षिणी किनारे पर इस शहर की स्थापना की। समय-समय पर इसके नाम बदलते रहे। इसे पुष्पपुर, पुष्पनगर, कुसुमपुर, पाटलिपुत्र और अब पटना कहा जाता है।

जब चाणक्य यहाँ पहुँचे, यह ज्ञानियों और विद्वानों का आदर करने वाले शहर के रूप में जाना जाता था। नए विचारों की उत्पत्ति और राज्य के विकास के लिए देश भर के विद्वान् लोगों को यहाँ आदरपूर्वक आमंत्रित किया जाता था। इसलिए देश की एकता बनाए रखने का अभियान चाणक्य ने यहीं से आरंभ करने का विचार बनाया।

चाणक्य की शपथ

पाटलिपुत्र का राजा घनानंद एक अनैतिक और क्रूर स्वभाव का व्यक्ति था। उसका बस एक ही उद्देश्य था—किसी भी तरह धन-संचय करना। वह धन के मामले में पूरी तरह असंतुष्ट था। प्रजा को वह काँटे की तरह खटकता था; लेकिन कोई उसके खिलाफ बोलने का दुःसाहस नहीं कर पाता था। प्रजा तरह-तरह के करों से दबी हुई थी। कर-वसूली का उद्देश्य केवल राजा की स्वार्थ-पूर्ति करना था। चमड़े, लकड़ी और पत्थरों पर भी कर-वसूली होती थी। घनानंद का खजाना पूरी तरह भरा था, फिर भी उसके लालच का अंत नहीं था।

जब चाणक्य पाटलिपुत्र पहुँचे तो राजा घनानंद के व्यवहार में थोड़ी नरमी आई। वह गरीबों की मदद करने लगा। उसने गरीबों की मदद के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति में विद्वान् और समाज के प्रभावशाली लोग शामिल थे।

चाणक्य भी चूँकि तक्षशिला के महान् विद्वान् थे, इसलिए उन्हें भी इस समिति में शामिल कर लिया गया। बाद में चाणक्य इस समिति 'सुनघा' के प्रमुख भी बनाए गए। समिति के प्रमुख अकसर राजा से मिलते रहते थे। इसी क्रम में चाणक्य जब पहली बार घनानंद से मिले तो उनकी कुरूपता के कारण उन्हें अपमान झेलना पड़ा। समय के

साथ चाणक्य के प्रति घनानंद की घृणा बढ़ती ही गई। चाणक्य के कटु किंतु सत्य शब्द भी घनानंद को चुभते थे। इस प्रकार घनानंद और चाणक्य के बीच शत्रुता बढ़ती गई। चाणक्य राजा की चाटुकारिता के स्थान पर पेशेवर की तरह काम करते थे। वे संक्षेप में साफ-साफ अपनी बात रखते थे। राजा को चाणक्य का यह व्यवहार बड़ा अरुचिपूर्ण लगता था। इसलिए एक दिन उसने चाणक्य को उनके पद से हटा दिया और राजमहल से निकाल दिया। इस अपमान से चाणक्य तिलमिला उठे और उन्होंने शपथ ली कि वे तब तक अपनी शिखा (चोटी) नहीं बाँधेंगे जब तक कि घनानंद को सिंहासन से न उखाड़ फेंकेंगे।

चंद्रगुप्त से भेंट

राजा से अपमानित होकर चाणक्य पाटलिपुत्र की गलियों को रौंदते दनदनाते हुए आगे बढ़ रहे थे। एकाएक एक काँटे ने उनका पैर बेध दिया। वे लड़खड़ाकर तेजी से सँभले। विद्वान् चाणक्य का परिस्थितियों से निबटने का अपना अलग ही तरीका था। उन्होंने काँटे के उस पौधे को देखा, जिसका काँटा उन्हें लगा था। उस समय चूँकि वे क्रोध में थे, इसलिए उसे अनियंत्रित नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए शांतिपूर्वक चिलचिलाती धूप में बैठ गए और काँटेदार पौधे की जड़ें उखाड़ने लगे। थोड़ी देर बाद जब जड़ सहित पूरा पौधा उखड़कर बाहर आ गया तो उसे एक ओर फेंककर उन्होंने फिर से अपनी राह पकड़ ली।

जब चाणक्य काँटेदार पौधे को उखाड़ रहे थे तो उनकी तन्मयता को एक युवक गौर से देख रहा था। वह चंद्रगुप्त था-मौर्य साम्राज्य का भावी शासक। उसका चेहरा तेजपूर्ण था। चाणक्य की दृढ़ता देखकर वह प्रभावित था और उस ज्ञानी पुरुष से बात करना चाहता था।

वह चाणक्य के निकट पहुँचा और उनसे आदरपूर्वक बात करने लगा। चाणक्य ने उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बात करते हुए पूछा, "तुम कौन हो? कुछ चिंतित दिखाई पड़ते हो?"

युवक चंद्रगुप्त ने आदरपूर्वक आगे झुकते हुए कहा, "श्रीमान, आपका अनुमान ठीक है। मैं बहुत मुसीबत में हूँ। लेकिन अपनी परेशानी बताकर मैं आपको परेशान नहीं करना चाहता।"

चाणक्य ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "तुम निस्संकोच अपनी परेशानी मुझे बता सकते हो। यदि मेरे वश में हुआ तो मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा।"

"मैं राजा सर्वार्थसिद्धि का पौत्र हूँ। उनकी दो पत्नियाँ थीं—सुनंदा देवी एवं मुरा देवी। सुनंदा के नौ पुत्र हुए, जो नवनंद कहलाए। मुरा के एक पुत्र था, जो मेरे पिता थे। नवनंदों ने बार-बार मेरे पिता को जान से मारने की कोशिश की। हम सौ से अधिक भाई थे। ईर्ष्यावश नवनंद हम सभी की जान लेने पर तुले हुए थे। किसी तरह से मैं बचा रहा; पर मेरा पूरा जीवन बरबाद हो गया है। मैं नंद से प्रतिशोध लेना चाहता हूँ, जो इस समय देश पर शासन कर रहे हैं।"

दुश्मन का दुश्मन दोस्त। घाव खाए चाणक्य को नंद के विरुद्ध एक साथी मिल गया था। चंद्रगुप्त की कहानी सुनकर चाणक्य को गहरा धक्का लगा। भावना से भरकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे नंद वंश का नाश करके चंद्रगुप्त को उसकी सही जगह पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ करने तक चैन से नहीं बैठेंगे।

चाणक्य ने कहा, "मैं तुम्हें राजपद तक पहुँचाऊँगा, चंद्रगुप्त।"

उस दिन से चंद्रगुप्त और चाणक्य क्रूर व अत्याचारी नंद के कुशासन का अंत करने में जुट गए।

चंद्रगुप्त के बारे में ठीक-ठीक कहीं कुछ नहीं लिखा गया है। जन्म-स्थान, पारिवारिक पृष्ठभूमि और उसके जीवन से जुड़ी अन्य जानकारियाँ उपलब्ध नहीं हैं। उसके माता-पिता के बारे में अलग-अलग ग्रंथों में अलग-अलग बातें लिखी हुई हैं। वास्तव में वह मोरिया समुदाय से संबद्ध था। इसी के बाद संभवतः उसे 'चंद्रगुप्त मौर्य' नाम दिया गया और उसका राजवंश 'मौर्य वंश' के नाम से जाना गया। कहा जाता है कि उसकी माता एक गाँव के मुखिया की बेटी थी। उसके पिता पिपतवन नामक जंगली इलाके के राजा थे, जो एक युद्ध के दौरान मारे गए थे। चंद्रगुप्त अपनी माता के साथ पाटलिपुत्र आया था।

चंद्रगुप्त में नेतृत्वकर्ता के जन्मजात गुण थे। बालकों में भी सब उसे अपना नेता मानते थे। बालकों के राजा के रूप में वह अपना दरबार लगाता था और न्याय करता था। साहस और सूझ-बूझ के गुण बचपन से ही उसमें दिखाई देने लगे थे। जब चाणक्य पाटलिपुत्र की गलियों से गुजर रहे थे तो उन्होंने एक सिंहासननुमा ऊँची चट्टान पर चंद्रगुप्त को राजसी अंदाज में बैठे देखा था। उसके सामने बालकों का समूह फरियादी बनकर फरियाद कर रहा था। चंद्रगुप्त का प्रभावान् मुखमंडल और बुद्धिमत्तापूर्ण संभाषण सुनकर चाणक्य बहुत प्रभावित हुए थे।

सात-आठ वर्ष तक चंद्रगुप्त ने शिक्षा ग्रहण की। उसके शिक्षकों का चयन स्वयं चाणक्य ने किया था। इसके बाद युद्ध-कला और शासन-दोनों में चंद्रगुप्त पारंगत हो गया।

सिकंदर का आक्रमण

इतने वर्षों के दौरान चंद्रगुप्त एवं चाणक्य की मैत्री खूब फली-फूली थी और शत्रुओं का सामना करने के लिए उन्होंने एक बड़ी सेना संगठित कर ली थी। इस बीच चाणक्य और चंद्रगुप्त ने कई ऐतिहासिक घटनाएँ देखीं। दशकों तक भारतीय उपमहाद्वीप पर सिकंदर एवं अन्य कई हमलावरों ने आक्रमण किए। कहा जाता है कि चंद्रगुप्त और सिकंदर का आमना-सामना भी हुआ। चंद्रगुप्त के दुःसाहस और सख्त रवैए ने सिकंदर को रुष्ट कर दिया था। परिणामस्वरूप सिकंदर ने चंद्रगुप्त को बंदी बना लिया। चाणक्य का प्रशिक्षण चूँकि पूरा हो चुका था, इसलिए चंद्रगुप्त के युद्ध-कौशल को परखने के लिए उन्होंने उसे खुला छोड़ दिया था। सिकंदर की युद्ध-नीति का चाणक्य ने गहन अध्ययन किया था। साथ ही वे भारतीय शासकों की कमजोरियों के प्रति भी सचेत थे।

सीधा-सादा ग्रामीण बालक चंद्रगुप्त अब एक मजबूत सेनानायक बन गया था। चंद्रगुप्त और उसकी सेना को चाणक्य के दिमाग और महान् व्यक्तित्व से ताकत मिलती थी। उत्तरी भारत की स्वतंत्रता के उस युद्ध में, जहाँ चंद्रगुप्त शरीर था तो उसका मस्तिष्क थे चाणक्य।

अपने सेनानायकों की कमजोरी के चलते सिकंदर की ताकत भी घटने लगी थी। सिकंदर के रहते ही निकोसर नामक उसका एक वीर सेनानायक मारा गया। बाद में फिलिप नामक एक अन्य सेनानायक, जिसे दुर्जेय समझा जाता था, उसकी मौत ने सिकंदर को बुरी तरह तोड़कर रख दिया। बेबीलोन में सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके सभी सेनानायक या तो मारे गए या खदेड़ दिए गए। 321 ई-पू- में सिकंदर के सैन्य अधिकारियों ने उसके साम्राज्य को आपस में बाँट लिया। यह तय हुआ कि सिंधु के पूर्व में उनका शासनाधिकार समाप्त हुआ। इस प्रकार उन्होंने स्वयं स्वीकार कर लिया कि भारत के उस हिस्से पर अब उनका अधिकार नहीं रहा।

नंद की पराजय

नंद पर आक्रमण से पहले चाणक्य ने एक सुदृढ़ रणनीति तैयार की। चाणक्य ने शुरू में आक्रमण की नीति को शहर के मध्य भाग पर आजमाकर देखा। लेकिन उन्हें बार-बार पराजय का सामना करना पड़ा। अपनी रणनीति को बदलते हुए चंद्रगुप्त और चाणक्य ने इस बार मगध साम्राज्य की सीमाओं पर आक्रमण किया। लेकिन इस बार भी उन्हें निराशा हाथ लगी।

चंद्रगुप्त और चाणक्य ने पिछली गलतियों से सबक लेकर रणनीति में परिवर्तन किया और निकटवर्ती राजा पर्वतक (या पौरुस द्वितीय) से मैत्री कर ली। अब पर्वतक, उसका भाई वैरोचक और पुत्र मलयकेतु अपनी सेनाओं के साथ उनकी सहायता के लिए आ गए। नंद राजा को एक बड़ी सेना का समर्थन प्राप्त था। उसके योग्य मंत्री, अमात्य राक्षस का सहयोग भी उसके लिए किसी वरदान से कम नहीं था। अमात्य राक्षस एक योग्य और राजा का स्वामीभक्त मंत्री था। चाणक्य ने एक योजना तैयार करके नंद के खेमे में अपने जासूस छोड़ दिए। थोड़े ही समय के भीतर नंद की कमजोरियाँ उन पर जाहिर हो गईं। दूसरी ओर नंद और अमात्य राक्षस चाणक्य के हमले से बचने की योजना बनाने में जुटे थे।

नंद और चंद्रगुप्त एवं चाणक्य के बीच हुए युद्ध का ब्योरा उपलब्ध नहीं है, लेकिन वह निश्चय ही एक भीषण और भयावह युद्ध था। उसमें नंद मारा गया। उसके पुत्र और संबंधी भी मारे गए। अमात्य राक्षस भी असहाय हो गया। इस प्रकार चाणक्य ने नंद वंश को उखाड़ फेंका।

चाणक्य की मूल भावना

चाणक्य का प्रतिशोधपूर्ण जीवन व्यक्तियों को प्रतिशोध लेने की भावना को प्रेरित करता है। लेकिन व्यक्तिगत प्रतिशोध चाणक्य का उद्देश्य नहीं था। वे चाहते थे कि राज्य सुरक्षित रहे, शासन सुचारु ढंग से चले और प्रजा सुख-शांतिपूर्वक रहे। उन्होंने लोगों की संपन्नता सुनिश्चित करने के लिए दो तरीके अपनाए। पहला, अमात्य राक्षस को चंद्रगुप्त का मंत्री बना दिया गया; दूसरा, एक पुस्तक लिखी गई, जिसमें राजा के आचार-व्यवहार का वर्णन किया गया कि वह शत्रुओं से अपनी और राज्य की रक्षा कैसे करे कानून-व्यवस्था को कैसे सुनिश्चित करे आदि।

चाणक्य का सपना था कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से भारत विश्व में अग्रदूत बने। उनकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में उनके सपनों के भारत के दर्शन किए जा सकते हैं। 'नीतिशास्त्र' एवं 'चाणक्य नीति' में उनकी विचारोत्तेजकता से प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है। उनके कुछ विचारों से उनके सामाजिक दृष्टिकोण को समझा जा सकता है-

- जनसामान्य की सुख-संपन्नता ही राजा की सुख-संपन्नता है। उनका कल्याण ही उसका कल्याण है। राजा को अपने निजी हित या कल्याण के बारे में कभी नहीं सोचना चाहिए, बल्कि अपना सुख अपनी प्रजा के सुख में खोजना चाहिए।
- राजा का गुप्त कार्य है निरंतर प्रजा के कल्याण के लिए संघर्षरत रहना। राज्य का प्रशासन सुचारु रखना उसका धर्म है। उसका सबसे बड़ा उपहार है-सबसे समान व्यवहार करना।
- आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था श्रेष्ठ अर्थव्यवस्था है, जो विदेश व्यापार पर निर्भर नहीं होनी चाहिए।
- समतावादी समाज हो, जहाँ सबके लिए समान अवसर हों।
- चाणक्य के अनुसार, संसाधनों के विकास के लिए प्रभावी भू-व्यवस्था होनी आवश्यक है। शासन के लिए यह आवश्यक है
- कि वह जमींदारों पर नजर रखे कि वे अधिक भूमि पर कब्जा न करें और भूमि का अनधिकृत इस्तेमाल न करें।
- राज्य को कृषि-विकास पर सतत नजर रखनी चाहिए। सरकारी मशीनरी को बीज बोने से लेकर फसल काटने तक की प्रक्रियाओं के उन्नयन की दिशा में कार्यरत रहना चाहिए।
- राज्य का कानून सबके लिए समान होना चाहिए।
- नागरिकों की सुरक्षा सरकार के लिए महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए, क्योंकि वही उनकी एकमात्र रक्षक है जो केवल उसकी उदासीनता के कारण ही असुरक्षित हो सकती है।

चाणक्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जो भौतिक आनंद से आत्मिक आनंद को अधिक महत्त्व देता हो। उनका कहना था कि आंतरिक शक्ति और चारित्रिक विकास के लिए आत्मिक विकास आवश्यक है। देश और समाज के आत्मिक विकास की तुलना में भौतिक आनंद और उपलब्धियाँ हमेशा द्वितीयक हैं।

2,300 वर्ष पहले लिखे गए चाणक्य के ये शब्द आज भी हमारा मार्गदर्शन करते हैं। अगर उनकी राजनीति के सिद्धांतों का थोड़ा भी पालन किया जाए तो कोई भी राष्ट्र महान्, अग्रदूत और अनुकरणीय बन सकता है।

पहला अध्याय

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्॥

भारतीय संस्कृति में ईश्वर की स्तुति से ही शुभ कार्य का आरंभ किया जाता है। चाणक्य ने भी पृथ्वी, आकाश एवं पाताल अर्थात् तीनों लोकों के रचयिता, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक परब्रह्म को प्रणाम करके अपने महान् ग्रंथ का आरंभ किया। उन्होंने ईश्वर की स्तुति करते हुए कहा—हे ईश्वर! जन-कल्याण हेतु मैं विभिन्न शास्त्रें से एकत्रित यह राजनीतिक नियम सृजित कर रहा हूँ। अतः हे ईश्वर! मुझे शक्ति और आशीर्वाद प्रदान करें।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभम्॥

इस ग्रंथ के अध्ययन, चिंतन और मनन से साधारण मनुष्य भी योग्य-अयोग्य, उचित-अनुचित का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हो जाएगा। इस ग्रंथ के माध्यम से प्राणियों को पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य के प्रति सजग करना ही मेरा एकमात्र ध्येय है। इसकी नीतिगत बातों का अनुपालन करके मनुष्य अपने जीवन को प्रकाशित बनाएँ, इसी में इस ग्रंथ की सार्थकता निहित है।

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते॥

जन-कल्याण हेतु मैं राजनीति के उन गुप्त रहस्यों का वर्णन कर रहा हूँ, जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य सर्वज्ञ हो जाएगा। यदि मनुष्य इस शास्त्र के नीतिगत विचारों का अनुसरण करे तो निस्संदेह सफलता उसके कदम चूमेगी।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति॥

मूर्ख शिष्यों को उपदेश देने, दुष्ट स्त्री का भरण-पोषण करने अथवा दुःखी व्यक्तियों की संगत से विद्वान् मनुष्य भी कष्ट भोगते हैं। इसलिए बुद्धिहीन व्यक्तियों को कभी भी सत्कार्य के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए। चरित्रहीन स्त्री से दूर रहें, अन्यथा वह बदनामी का कारण बन जाएगी। इसी प्रकार दुःखी व्यक्ति से कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। अतः उसकी संगत से बचें।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥

कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, पापयुक्त आचरण करनेवाले मित्र तथा विश्वासघाती एवं स्वेच्छाचारी सेवक की संगत करनेवाले मनुष्य के निकट निश्चित ही मृत्यु का वास होता है। ऐसा मनुष्य कभी भी मृत्यु का ग्रास बन सकता है।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥

वह मनुष्य बुद्धिमान होता है, जो बुरे समय अथवा विपत्तिकाल के लिए धन की बचत करता है। ऐसी बचत की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार स्त्री भी धन के समान है, इसलिए उसकी भी रक्षा करें। लेकिन इससे पूर्व मनुष्य को अपनी सुरक्षा के प्रति सतर्क रहना चाहिए। यदि वह स्वयं सुरक्षित है, तभी धन और स्त्री की रक्षा करने में समर्थ होगा।

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतां कुत आपदः।
कदाचिच्चलिते लक्ष्मीः सञ्चितोऽपि विनश्यति॥

विपत्तिकाल के लिए मनुष्यों को धन का संचय अवश्य करना चाहिए। लेकिन कभी यह न सोचें कि धन के द्वारा वे विपत्ति को दूर करने में समर्थ हो जाएँगे। चंचलता लक्ष्मी का स्वभाव है, इसलिए वह कहीं भी नहीं ठहरती। यद्यपि धन का संचय मनुष्य की बुद्धिमत्ता का परिचायक है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे विपत्तिकाल नष्ट हो जाएगा।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्याऽऽगमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥

जिस स्थान पर मनुष्य का आदर-सम्मान न हो, आजीविका के साधन न हों, अनुकूल मित्र एवं संबंधी न हों, विद्यार्जन के उपयुक्त साधन न हों—ऐसा स्थान सर्वथा अनुपयुक्त है। इसलिए बिना विलंब किए उसे छोड़ देना चाहिए।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत्॥

जो स्थान पाँच प्रकार की मूलभूत सुविधाओं-अर्थात् कर्मकांडी ब्राह्मणों, न्यायप्रिय राजा, धनी-संपन्न व्यापारी, जलयुक्त नदियों तथा सुयोग्य चिकित्सकों से रहित हो, वह बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। उसका उसी क्षण त्याग कर देना चाहिए।

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्॥

जिस स्थान पर निवास करनेवाले मनुष्य लोक-परलोक के प्रति आस्था न रखते हों, जो ईश्वर की महत्ता को अस्वीकार करें, लोक-परलोक का जिन्हें कोई भय न हो, जो परोपकार और दानशीलता से रहित हों, बुद्धिमान मनुष्य को कभी भी ऐसे स्थान पर निवास करने के बारे में नहीं सोचना चाहिए।

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनाऽऽगमे।
मित्रं चाऽऽपत्तिकालेषु भार्यां च विभवक्षये॥

काम के उत्तरदायित्व से सेवकों की, कष्ट अथवा संकट के समय मित्रें की, दुःख या असाध्य बीमारी में सगे-संबंधियों की तथा धनहीन होने पर स्त्री की परीक्षा होती है।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु-संकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

चाणक्य के अनुसार, मनुष्य का सच्चा हितैषी वही है जो बीमारी, अकाल या शत्रु द्वारा कष्ट दिए जाने पर; किसी संकट या विषम परिस्थिति में फँस जाने पर तथा मृत्यु के उपरांत श्मशान तक साथ देता हो। अर्थात् सुख या दुःख-दोनों परिस्थितियों में साथ देनेवाला मनुष्य ही सच्चा मित्र कहलाता है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च॥

निश्चित एवं साध्य कर्म को छोड़कर अनिश्चित एवं असाध्य कर्मों की ओर दौड़नेवाला मनुष्य कभी सफल नहीं होता। ऐसी स्थिति में वह दोनों से ही रिक्त हो जाता है। इसलिए जिस कार्य में सफलता निश्चित हो, मनुष्य को केवल वही कार्य करना चाहिए।

वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्।
रूपवतीं न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले॥

कुलीन युवती कुरूप ही क्यों न हो, विद्वान् और बुद्धिमान व्यक्ति के लिए वह श्रेष्ठ होती है। इसलिए उन्हें अपने स्तर की कुलीन युवती से ही विवाह करना चाहिए। इसके विपरीत रूप-सौंदर्य से परिपूर्ण निम्न कुल में जनमी युवती से विवाह करने पर मनुष्य की बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं। ऐसे संबंध क्षण-भंगुर होते हैं, इसलिए विद्वानों को इनसे बचना चाहिए।

नखीनां च नदीनां च शृङ्गीणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥

तीखे नाखूनोंवाले हिंसक पशु, बड़े सींगवाले पशु, तीव्र वेगवाली नदियाँ, शस्त्रधारी व्यक्ति, स्त्रियाँ तथा राजकुल से संबंधित व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं होते—अर्थात् ये कभी भी विश्वासघात कर सकते हैं। इसलिए मनुष्य को इन पर विश्वास करने से बचना चाहिए।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

चाणक्य के अनुसार, यदि विष से भी अमृत की प्राप्ति संभव हो तो निस्संकोच उसका सेवन कर लेना चाहिए। इसी तरह अशुद्ध वस्तुओं में से स्वर्ण, निम्न मनुष्य से शिक्षा तथा निम्न कुल से सुसंस्कृत स्त्री-रत्न को विलंब किए बिना स्वीकार कर लेना चाहिए।

स्त्रीणां द्विगुण आहारो बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
साहसं षड्गुणं चैव कामोऽष्टगुण उच्यते॥

स्त्रियों के बारे में चाणक्य कहते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का आहार दुगुना, लज्जा चौगुनी, साहस छह गुना तथा काम-भाव आठ गुना अधिक होता है।

दूसरा अध्याय

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलुब्धता।
अशौचत्वं निद्रयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥

चाणक्य के अनुसार, स्वाभाविक गुण-दोष प्रत्येक प्राणी की व्यक्तिगत उपलब्धि होती है। स्वाभाविक गुण-दोष वे होते हैं, जो प्राणी के अंदर जन्म के साथ प्रकट होते हैं इन्हें कहीं भी बाहर से ग्रहण नहीं करना पड़ता। इसी संदर्भ में उन्होंने असत्य संभाषण, निडरता, छल-कपटता, मूर्खता, लालच, अपवित्रता और निर्दयता को स्त्रियों के स्वाभाविक दोषों में सम्मिलित किया है। लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि प्रत्येक स्त्री में उपर्युक्त दोषों का होना आवश्यक नहीं है।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना।
विभवो दानशक्तिश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम्॥

चाणक्य कहते हैं कि भोजन-योग्य स्वादिष्ट व्यंजन एवं उन्हें ग्रहण करने का सामर्थ्य रूपवान् स्त्री एवं भोग-विलास की शक्ति तथा विपुल धन एवं दानशीलता जैसे गुण केवल घोर तप अथवा पूर्वजन्म के सुकर्मों के परिणामस्वरूप ही प्राप्त होते हैं।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दाऽनुगामिनी।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि॥

जिस व्यक्ति का पुत्र आज्ञाकारी, पत्नी पतिव्रता एवं अनुकूल आचरण करनेवाली हो तथा जो परिश्रम द्वारा अर्जित धन से पूर्णतः संतुष्ट हो, वह जीवित अवस्था में ही स्वर्ग का सुख अनुभव कर लेता है— अर्थात् वह सदैव परम संतुष्ट एवं सुखी रहता है।

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यस्य विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृत्तिः॥

चाणक्य के अनुसार, केवल वही आदमी पुत्र कहलाने योग्य है, जो अपने माता-पिता की आज्ञा का सदैव पालन करता है। वास्तविक अर्थों में पिता के स्थान पर केवल वही मनुष्य योग्य है, जो अपनी संतान का भली-भाँति पालन-पोषण करता हो, उनके दुःख-सुख का ध्यान रखता हो। विश्वसनीय व्यक्ति ही सच्चा मित्र और पति को सुख देनेवाली स्त्री ही वास्तव में पत्नी कहलाती है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

जिस प्रकार बाहर से सुंदर दिखाई देनेवाले फल अधिकतर मीठे नहीं होते, उसी प्रकार मीठे वचन बोलनेवाले लोग भी घातक और अविश्वसनीय होते हैं। मुख पर प्रशंसा तथा पीठ पीछे निंदा करनेवाले मनुष्य मित्रता के योग्य नहीं होते। ऐसे मनुष्य विष मिले दूध के समान होते हैं। इसलिए ऐसे लोगों से सदैव सतर्क रहें और अतिशीघ्र उनका त्याग कर दें।

न विश्वसेत् कुमित्रे च मित्रे चाऽपि न विश्वसेत्।
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्।।

यद्यपि चाणक्य के अनुसार निकृष्ट मित्र पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, तथापि उन्होंने अच्छे और हितैषी मित्र से भी सावधान रहने का परामर्श दिया है। इस कथन के संदर्भ में वे कहते हैं कि यदि किसी कारणवश हितैषी मित्र शत्रु बन जाए तो वह सभी गोपनीय बातों को जानने के कारण मनुष्य का अहित कर सकता है।

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये चाऽपि नियोजयेत्।।

किसी अभीष्ट कार्य पर चिंतन-मनन करते समय या उसे कार्यान्वित करने से पूर्व वाणी द्वारा उसे प्रकट कर देने से कार्य के पूर्ण होने में संदेह उत्पन्न हो जाता है। इसलिए ध्यान रखें, जब तक कार्य-योजना पूरी तरह से सफल न हो जाए तब तक उसका उल्लेख किसी से न करें।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम्।
कष्टात् कष्टतरं चैव परगेहनिवासनम्।।

यद्यपि अज्ञान कष्टप्रदायक होता है तथा इसके कारण मनुष्य उपहास का पात्र बन जाता है, यौवन भी असीमित कष्ट प्रदान करनेवाला है। लेकिन चाणक्य की दृष्टि में किसी दूसरे पर आश्रित होकर जीना सबसे अधिक कष्टदायक होता है। ऐसा व्यक्ति पशु-तुल्य हो जाता है। उसे दूसरे व्यक्ति के अनुसार समस्त कर्म करने पड़ते हैं। अतः उचित यही है कि मनुष्य सबल होकर जीवन व्यतीत करें।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।।

यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक पर्वत हीरे-जवाहरात से युक्त हो, समस्त हाथियों के मस्तक पर मुक्तामणि सुशोभित हो, प्रत्येक स्थान पर सज्जन मनुष्य का वास हो तथा प्रत्येक वन में चंदन वृक्ष हों। अर्थात् संसार में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के अनेक मनुष्य वास करते हैं। ऐसी स्थिति में हमें केवल सज्जन और श्रेष्ठ मनुष्य से ही संपर्क बढ़ाने चाहिए। इससे अभीष्ट कार्य अवश्य संपन्न होगा।

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः।
नीतिज्ञाः शीलसम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिताः॥

चूँकि ज्ञानी मनुष्य ज्ञान के माध्यम से संसार के अज्ञान रूपी अंधकार का नाश कर देते हैं, इसलिए ज्ञानी व्यक्ति को अपनी संतानों को भी चरित्र-निर्माण के कार्यों में लगाना चाहिए। उनके गुणों में अभिवृद्धि करने के लिए उनकी उचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे उनके अंदर के ज्ञानयुक्त गुण संसार में पूजनीय और आदरणीय हो जाते हैं।

इस श्लोक के माध्यम से चाणक्य गुणी व्यक्ति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार किसी धार्मिक स्थल को देखकर हमारे मस्तक स्वतः ही श्रद्धा से झुक जाते हैं, उसी प्रकार गुणी व्यक्ति ज्ञान और आस्था के प्रतीक बनकर मनुष्यों के हृदय में स्थान प्राप्त करते हैं।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

चूँकि मूर्ख और अज्ञानी मनुष्य उपहास का पात्र बनकर रह जाता है। ज्ञानवान् मनुष्यों में उनकी स्थिति हंसों के बीच कौए जैसी होती है। वह न तो अपने विचार प्रकट करने में सक्षम होता है और न ही दूसरों के ज्ञानयुक्त विचारों को स्वीकार करने योग्य। यही कारण है कि चाणक्य ने उन माता-पिता को अपनी संतानों का घोर शत्रु कहा है, जो उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं दिलवाते।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

चाणक्य के अनुसार, अधिक लाड़-प्यार करने तथा बच्चों की उचित-अनुचित अर्थात् सभी इच्छाएँ पूर्ण कर देने से उनमें अनेक अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं। भविष्य में ये अवगुण ही बच्चों की प्रगति और विकास में बाधा बन जाते हैं। अतः लाड़-प्यार के साथ प्रताड़ना भी परम आवश्यक है। एक कुम्हार चाक पर घूमते मिट्टी के लोंदे को कभी प्यार से थपथपाकर, कभी सहलाकर तो कभी पीटकर उसे एक सुंदर बरतन का आकार दे देता है। बाद में वही बरतन अपनी सुंदरता से लोगों को आकर्षित करता है। माता-पिता को कुम्हार की भाँति मिट्टी रूपी संतान का पालन-पोषण करना चाहिए।

श्लोकेन वा तदर्धेन पादेनैकाक्षरेण वा।
अबन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभिः॥

जीवन का एक-एक क्षण, प्रहर, दिवस अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मनुष्य को इसका सार्थकता से प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य प्रतिदिन एक वेद मंत्र, आधा श्लोक, श्लोकांश अथवा एक अक्षर का स्वाध्याय करे। यदि ऐसा करने में कोई बाधा हो तो दान करे। यदि मनुष्य के लिए दान करना भी संभव न हो तो उसे परोपकार अथवा अन्य शुभ कर्म करके दिन व्यतीत करना चाहिए। जो मनुष्य इसका अनुसरण नहीं करते, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण व्यर्थ जाता है।

कान्तावियोगः स्वजनापमानः ऋणस्य शेषं कुनृपस्य सेवा।
दरिद्रभावो विषमा सभा च विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम्॥

मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे दुःख होते हैं, जिन्हें भुलाना असंभव होता है। पत्नी-वियोग, स्वजन द्वारा किया गया अपमान, ऋण, दुष्ट स्वामी की चाकरी तथा मूर्खों से युक्त स्थान में दरिद्रतायुक्त जीवन-यापन करना—ये कष्ट मनुष्य के शरीर को अस्वस्थ कर उसे मृत्यु की ओर धकेलते हैं।

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम्॥

चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार तीव्र वेग से बहनेवाली नदी के किनारे स्थित वृक्ष शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार दूसरे के साथ रहने वाली स्त्री तथा सुयोग्य मंत्री से हीन राजा का अतिशीघ्र नाश हो जाता है।

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा।
वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका॥

चाणक्य के अनुसार, जिस प्रकार ब्राह्मण विद्या-शक्ति से, राजा सैन्य-शक्ति से, वैश्य धन-शक्ति से तथा शूद्र सेवा-कार्य से अपने अस्तित्व को प्रकट करता है, उसी प्रकार संसार में प्रत्येक मनुष्य का किसी-न-किसी शक्ति के कारण ही अस्तित्व होता है। इस शक्ति के अभाव में वह पूर्णतः महत्त्वहीन हो जाता है।

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत्।
खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चाऽभ्यागता गृहम्॥

अतिथि के विषय में चाणक्य अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अतिथि का महत्त्व एक क्षणिक विराम में ही निहित है। निस्संकोच या निर्लज्ज होकर एक ही स्थान पर निवास करते रहना अतिथि के लिए अशोभनीय है। इसलिए जिस प्रकार वेश्या निर्धन पुरुष को, प्रजा पराजित हुए राजा को तथा पक्षी सूखे वृक्ष को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार भोजन के उपरांत अतिथि को भी साधुवाद करके वहाँ से अतिशीघ्र चले जाना चाहिए।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम्।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्या दग्धाऽरण्यं मृगास्तथा॥

चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार दक्षिणा प्राप्त करके ब्राह्मण आगे बढ़ जाता है, विद्यार्जन के बाद गुरु से विदाई लेकर शिष्य अपना मार्ग पकड़ लेता है तथा वन के जल जाने के बाद पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि उसे त्याग देते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को उद्देश्य की प्राप्ति हेतु लिया गया आश्रय उद्देश्य के पूर्ण हो जाने के बाद अतिशीघ्र छोड़कर चले जाना चाहिए। उसका यह कार्य बुद्धिमत्ता का परिचायक होगा।

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्दुराऽऽवासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति॥

दुराचारी, पापी, दुर्जन तथा दुष्ट स्वभाववाले व्यक्ति की संगत से बुद्धिमान एवं विवेकयुक्त मनुष्य भी कुछ समय उपरांत नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ऐसे मनुष्यों की मित्रता से बचना चाहिए। चाणक्य की दृष्टि में ऐसे मनुष्य के साथ मित्रता करने से केवल बुद्धिमान एवं योग्य मनुष्य को ही हानि उठानी पड़ती है। ऐसे मनुष्य कोयले की खान के समान होते हैं, जहाँ हर कोई काला हो जाता है।

समाने शोभते प्रीतिः राज्ञि सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु दिव्या स्त्री शोभते गृहे॥

अपने स्तर के व्यक्ति के साथ स्थापित प्रेम और सौहार्दयुक्त संबंध ही मनुष्य के लिए उचित होते हैं। इसी प्रकार शासकीय सेवा उचित होती है। व्यापार में लोक-व्यवहार और घर के लिए उत्तम गुणों से युक्त स्त्री उपयुक्त है। अर्थात् मनुष्य को सामाजिक स्तर पर बराबर के व्यक्ति के साथ संबंध बनाने चाहिए। इसी प्रकार केवल सरकारी नौकरी ही मनुष्य को स्थिरता प्रदान करती है। इसलिए अन्य नौकरियों की अपेक्षा इसे महत्त्व दें। व्यापार में लोक-व्यवहार और वाक्पटुता पर ही व्यक्ति की सफलता निर्भर करती है। इसी तरह घर में केवल गुणवती और सुशिक्षिता स्त्री ही शोभायमान होती है। इसलिए मनुष्य उपर्युक्त बातों का सदैव अनुपालन करें।

तीसरा अध्याय

कस्य दोष: कुले नास्ति व्याधिना को न पीडित:।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥

संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं है, जिसके कुल या वंश में कोई दोष अथवा अवगुण न हो। यदि गहनता से परीक्षण किया जाए तो प्रत्येक व्यक्ति के कुल में कोई-न-कोई दोष अवश्य निकल आएगा। इसी प्रकार संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो नीरोगी या सुख-संपदा से परिपूर्ण हो। अर्थात् दुःख, कष्ट, पीड़ा एवं बीमारी कभी-न-कभी अवश्य मनुष्य को जकड़ती है। इसके प्रभाव से कोई भी बच नहीं सकता। सुख-दुःख एवं उतार-चढ़ाव प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते-जाते हैं। लेकिन मनुष्य को असहाय होने के स्थान पर साहसपूर्वक इनका सामना करना चाहिए।

आचार: कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्।
सम्भ्रम: स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥

मनुष्य का आचार-विचार ही उसके कुल का परिचायक होता है। वार्त्तालाप से उसके देश विशेष का, व्यवहार से उसके स्नेहभाव एवं मान-सम्मान का तथा उसके शरीर से भोजन का ज्ञान होता है। अन्य शब्दों में, मनुष्य का व्यक्तित्व उसके संपूर्ण कृतित्व का दर्पण होता है। केवल मनुष्य के व्यक्तित्व को देखकर ही बुद्धिमान व्यक्ति उसके गुण-दोषों का अनुमान लगा सकता है।

सुकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत्।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मे नियोजयेत्॥

बुद्धिमान व्यक्ति के संबंध में चाणक्य अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ऐसे मनुष्य को अपनी पुत्री का विवाह किसी श्रेष्ठ एवं सुयोग्य कुल में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पुत्र को श्रेष्ठ शिक्षा दिलवानी चाहिए तथा मित्रें को धर्म-कर्म से संबंधित शुभ कार्यों में लगाना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह अपने शत्रु पक्ष को सदा किसी-न-किसी कष्ट में उलझाए रखे। इससे वे कभी भी उसके लिए मुसीबत या संकट उत्पन्न नहीं कर पाएँगे। निस्संदेह इस श्लोक में चाणक्य ने अपनी कूटनीति की झलक दिखाई है।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जन:।
सर्पो दंशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे॥

सर्प और दुर्जन व्यक्ति के बीच में तुलना करते हुए चाणक्य कहते हैं कि सर्प केवल काल के बलवान् होने पर ही काटता है। इसके विपरीत दुर्जन व्यक्ति कदम-कदम पर विश्वासघात करता है, व्यर्थ पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए यदि दोनों में से किसी एक को चुनने का अवसर आ जाए तो बिना संकोच किए सर्प को चुन लेना चाहिए।

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम्।
आदिमध्याऽवसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम्॥

चूँकि बुद्धिमान एवं कुलीन व्यक्ति विपरीत एवं विषम परिस्थितियों में भी साथ नहीं छोड़ते, इसलिए राजा एवं विद्वान् मनुष्य भी इन्हें आश्रय देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ऐसे सुसंस्कृत एवं विवेकयुक्त मनुष्य विपरीत परिस्थितियों से लड़ने में सक्षम होने के कारण साहसपूर्वक उनका सामना करते हैं।

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः॥

बुद्धिमान व्यक्तियों की प्रशंसा करते हुए चाणक्य कहते हैं कि अनेक नदियों का जल स्वयं में समाहित करने के बाद भी समुद्र शांत बना रहता है। लेकिन जब प्रलयकाल आता है, तब वह भी अंततः अपनी सीमाएँ तोड़कर संपूर्ण पृथ्वी को जलमग्न करने के लिए व्याकुल हो उठता है। परंतु धीर, गंभीर, सज्जन एवं बुद्धिमान व्यक्ति अनेक विपत्तियों के आने की स्थिति में भी शांत बना रहता है। अर्थात् किसी भी स्थिति में वह धैर्य का साथ नहीं छोड़ता तथा तटस्थ होकर उनके निवारण का उपाय ढूँढ़ता है।

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्शल्येन अदृष्टः कण्टको यथा॥

मूर्ख व्यक्ति दो पैरोंवाले पशु के समान होता है। उसे न तो उचित-अनुचित का ज्ञान होता है और न ही उसे कुछ समझाया जा सकता है। अतः ऐसे मनुष्य का अतिशीघ्र त्याग कर देना चाहिए। जिस प्रकार पैर में घुसा काँटा दिखाई न देने पर भी भयंकर पीड़ा पहुँचाता है, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति द्वारा कहे गए मूर्खतापूर्ण वचन निरंतर सज्जन मनुष्य को बेधते रहते हैं।

रूपयौवनसम्पन्नः विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥

इस श्लोक के माध्यम से चाणक्य ने विद्या की महत्ता पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार सुगंधित होने के बाद भी ढाक का सुंदर पुष्प न तो देवी-देवताओं पर चढ़ाया जाता है और न ही वह किसी को अपनी ओर आकर्षित कर पाता है, उसी प्रकार रूप-सौंदर्य से परिपूर्ण होने तथा उच्च कुल में जन्म लेकर भी विद्या-विहीन मनुष्य मान-सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता। रूप, सौंदर्य, धन, संपत्ति, बल, उच्च कुल एवं यौवन—इनकी शोभा बुद्धि और विद्या द्वारा बढ़ती है। इसके अभाव में मनुष्य ढाक के पुष्प के समान है।

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्॥

गुणों के महत्त्व से अवगत करवाते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार मीठी वाणी होने के कारण कोयल का

काला रंग गौण हो जाता है अर्थात् रसयुक्त स्वर ही उसका रूप बन जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता धर्म ही स्त्रियों का रूप-सौंदर्य होता है। रूप-सौंदर्य से युक्त लेकिन चरित्रहीन स्त्री की अपेक्षा कुरूप किंतु ज्ञानवान् एवं विवेकी स्त्री अधिक सुंदर है। ये गुण ही उसे आदर और सम्मान के योग्य बनाते हैं। इसी प्रकार क्षमाशीलता में ही तपस्वियों की शोभा निहित है। किसी तरह विवेक और धैर्य न खोना ही उनके तप की सच्ची कसौटी है। इसी के माध्यम से उनके तप की गहराई को मापा जा सकता है।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्याऽर्थे आत्माऽर्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

चाणक्य के अनुसार, यदि एक व्यक्ति का त्याग अथवा बलिदान करने से परिवार की रक्षा संभव है तो इससे कभी पीछे न हटें। इसी प्रकार पूरे ग्राम या समुदाय की रक्षा हेतु अपने परिवार का त्याग या बलिदान करना सर्वथा उचित है। राज्य को बचाने के लिए एक ग्राम या समुदाय का बलिदान करना पड़े तो अवश्य कर दें। लेकिन साथ ही चाणक्य यह भी कहते हैं कि मनुष्य के लिए स्वयं से बढ़कर कुछ नहीं होता। इसलिए स्वयं की उन्नति एवं रक्षा के लिए यदि संपूर्ण पृथ्वी की बलि देनी पड़े तो बिना किसी संकोच के दे दें। यदि मनुष्य स्वयं जीवित नहीं होगा तो ग्राम, समुदाय एवं राज्य उसके किस काम के रहेंगे।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरिते भयम्॥

जो व्यक्ति पुरुषार्थी अथवा कर्मशील होते हैं, उन्हें कभी दरिद्रता नहीं घेरती; ईश्वर-भक्ति में डूबे रहनेवाले व्यक्ति पापरहित होते हैं मौन रहने से वाद-विवाद नहीं होता, अपितु शांति बनी रहती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सावधान, सजग और जागरूक होगा, उसे न तो कोई भय सता सकता है और न ही कोई उसका अहित कर सकता है।

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः।
अतिदानं बलिर्दत्त्वा अति सर्वत्र वर्जयेत्॥

चाणक्य ने किसी भी वस्तु या कर्म की अति को अत्यंत हानिकारक बताया है। उनके अनुसार, अति सुंदर होने के कारण ही रावण द्वारा सीता का हरण हुआ। अहंकार और गर्व की अति ही महाविद्वान् रावण की मृत्यु का कारण बनी। दैत्यराज बलि की अति दानशीलता ने ही उसे सबकुछ गँवाकर पाताल जाने के लिए विवश कर दिया। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो 'अति' द्वारा मनुष्य का 'अंत' निश्चित है। अतः अति से बचें।

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥

जो मनुष्य समर्थ, योग्य एवं साहसी होते हैं, उनके लिए कोई भी कार्य असंभव या कठिन नहीं होता। वे जो ठान लेते हैं, उसे करके ही दम लेते हैं। व्यापार करनेवाले लोगों के लिए संसार का कोई भी स्थान दूर नहीं होता। वे कहीं भी आने-जाने में विलंब नहीं करते। विद्वान् के लिए कोई भी स्थान विदेश नहीं है। वे अपनी बुद्धि, विवेक एवं विद्या के बल पर कहीं भी अपने अनुयायी और मित्र उत्पन्न कर लेंगे। इसी प्रकार मधुर वाणी बोलनेवाला मनुष्य शत्रुओं को भी अपना मित्र बना लेता है। इसलिए उसका कोई शत्रु नहीं होता।

एकेनाऽपि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं तथा।।

गुणयुक्त व्यक्ति की प्रशंसा करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार सुगंधित फूलों से युक्त मात्र एक वृक्ष ही संपूर्ण वन को सुगंधित कर देता है, उसी प्रकार कुल में उत्पन्न एक गुणवान् पुत्र ही संपूर्ण कुल का उद्धार कर देता है।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं तथा।।

अवगुणी व्यक्ति के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि से तप्त एक वृक्ष ही संपूर्ण वन को जलाकर भस्म कर देता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न अवगुणी पुत्र अपने कर्मों द्वारा संपूर्ण कुल को कलंकित कर देता है। इसी तरह विद्वान् व्यक्ति का एक छोटा सा अवगुण उसके लिए अभिशाप बन जाता है। इसलिए मनुष्य को संतान में अच्छे संस्कारों एवं गुणों का बीजारोपण करना चाहिए।

एकेनाऽपि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी।।

जिस प्रकार चंद्रमा रात के समस्त अंधकार को हर लेता है—यह कार्य सहस्रों तारे भी एक साथ मिलकर नहीं कर सकते—उसी प्रकार गुणों से युक्त, विद्वान्, चरित्रवान् और सौम्य स्वभाव का पुत्र समस्त कुल को गौरवान्वित कर देता है। जिस प्रकार काली रात को कोई पसंद नहीं करता, उसी प्रकार अवगुणी पुत्र भी कुल के लिए अप्रिय होता है। इसलिए चाणक्य कहते हैं कि अनेक अवगुणी पुत्र उत्पन्न करने की अपेक्षा एक गुणी को उत्पन्न करना सर्वथा उपयुक्त है।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः।
वरमेकः कुलाऽऽलम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम्।।

गुणी पुत्र के संदर्भ में चाणक्य अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि उद्दंडी एवं अवगुणी पुत्र कुल को शोक एवं अपमान की ओर धकेलकर उसके विनाश का कारण बनते हैं। इसके विपरीत एक गुणी पुत्र अपने ज्ञान, विवेक और विद्वत्ता द्वारा कुल को समाज में गौरव प्रदान करता है। यद्यपि रावण के सहस्रों पुत्र एवं नाती थे, लेकिन अवगुणी होने के कारण वे सभी युद्ध में मारे गए। इसलिए कई अवगुणी पुत्रें की अपेक्षा एक गुणी पुत्र अधिक उपयुक्त होता है। इससे कुल के उत्थान और विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पिता के क्या कर्तव्य हैं—इस संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि पिता को अपनी संतान का पाँच वर्ष तक लाड़-प्यार के

साथ पालन-पोषण करना चाहिए तथा इसके बाद अगले दस वर्षों तक उस पर सख्ती रखें, क्योंकि यही समय उसके व्यक्तित्व-निर्माण का होता है। यह समय उस नींव की तरह होता है, जिस पर उसका शेष जीवन निर्भर करता है। संतान जब सोलह वर्ष की हो जाए तो उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करें मित्र के समान उसका मार्गदर्शन करें मित्र की तरह उसकी समस्याओं का निदान करें।

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसम्पर्के यः पलायेत् स जीवति॥

जो व्यक्ति देश-राज्य में होनेवाले भयंकर उपद्रवों, दंगे-फसाद, शत्रु द्वारा किए गए आक्रमण, भयंकर अकाल तथा दुष्टों की संगति से सुरक्षित बच निकलता है, वही अपने जीवन की रक्षा करने में समर्थ होता है। इस श्लोक के माध्यम से चाणक्य स्पष्ट करना चाहते हैं कि जीवन-रक्षा हेतु मनुष्य को परिस्थिति के अनुसार स्वयं को परिवर्तित कर लेना चाहिए।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
जन्म-जन्मनि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम्॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-ये चारों जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग कहे गए हैं। चाणक्य के अनुसार, जो मनुष्य इनमें से किसी एक भी गुण को नहीं अपनाता, उसका जीवन निरर्थक है। इन गुणों से रहित मनुष्य का जीवन मृत्यु-तुल्य है—अर्थात् वह मृत्यु के लिए जन्म लेता है तथा पुनर्जन्म के लिए ही मृत्यु को प्राप्त होता है। इसलिए मनुष्य को अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ के भोग-विलासों में नष्ट नहीं करना चाहिए। इसकी अपेक्षा अच्छे गुणों को ग्रहण कर पुण्य प्राप्त करना चाहिए।

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसञ्चितम्।
दम्पत्योः कलहो नाऽस्ति तत्र श्रीः स्वयमागता॥

चाणक्य के अनुसार, जिस राज्य में मूर्खों को आदर-सम्मान न मिलता हो, जो प्रचुर धन-धान्य से परिपूर्ण हो, जिस घर में पति-पत्नी में परस्पर विवाद न होता हो, वहाँ साक्षात् लक्ष्मी का वास होता है। उस स्थान पर कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं होता। घर के सभी प्राणी सुख और आनंद के साथ जीवनयापन करते हैं।

चौथा अध्याय

आयु: कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।

कर्म करने पर बल देते हुए चाणक्य कहते हैं कि जीव की आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु-इन पाँच बातों का निर्धारण उसी समय हो जाता है, जब वह माता के गर्भ में होता है। ये पाँचों बातें ईश्वर के अधीन हैं इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता। लेकिन फिर भी, मनुष्य को पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रा मित्राणि बान्धवाः।
ये च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात् सुकृतं कुलम्।।

चाणक्य कहते हैं कि जब कोई मनुष्य सामाजिक बाना उतारकर अर्थात् मोह-माया से विरक्त होकर साधु बन जाता है, तब उसके बंधु-बांधव उसे दूर तक छोड़कर घर लौट आते हैं और पुनः मोह-माया में डूब जाते हैं। लेकिन जो लोग उस वैरागी साधु के आचरण को जीवन में उतारकर परिवार सहित सदाचार का अनुसरण करते हैं, वे अपने कुल का उद्धार कर देते हैं।

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी।
शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः।।

सज्जन एवं साधु पुरुषों के विषय में चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार एक मछली दर्शन द्वारा, कछवी ध्यान द्वारा तथा पक्षी स्पर्श द्वारा अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं, उसी प्रकार सज्जन एवं श्रेष्ठ पुरुषों की संगति प्राणियों का पालन-पोषण करती है। उनकी संगति से ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसलिए मनुष्य को साधु पुरुष की संगति का प्रयास करना चाहिए।

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

धार्मिक पुण्य कर्मों का वर्णन करते हुए चाणक्य ने कहा है कि धर्म-कर्म, दान-तीर्थ, पूजा-अर्चना एवं व्रत-सत्संग आदि पुण्य कर्म मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसलिए आत्म-कल्याण हेतु मनुष्य को जीवित अवस्था में ही स्वस्थ एवं नीरोग रहते हुए इन सभी कर्मों का यथाविधि पालन करना चाहिए, अन्यथा मृत्यु के उपरांत कुछ शेष नहीं रहेगा।

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्।।

महर्षि वसिष्ठ के पास कामधेनु नामक एक गाय थी, जो उनकी सभी इच्छाओं को तत्काल पूर्ण कर देती थी। उसी प्रकार चाणक्य ने विद्या की तुलना कामधेनु गाय के साथ की है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार कामधेनु से युक्त व्यक्ति भूखा नहीं मर सकता, उसी प्रकार विद्यार्जन के उपरांत मनुष्य किसी भी संकट को झेलने के योग्य हो जाता है। परदेश में विद्या ही माँ के समान है, जो कदम-कदम पर मनुष्य की रक्षा करती है। विद्या ही गुप्त धन है, जिसे कोई चुरा नहीं सकता; अपितु इसे जितना अधिक खर्च किया जाएगा उतनी ही यह बढ़ती जाएगी।

वरमेको गुणी पुत्रो निर्गुणैश्च शतैरपि:।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारा: सहस्रश:।।

उत्तम गुणों से युक्त एक ही पुत्र सैकड़ों निर्गुणी पुत्रें से श्रेष्ठ होता है। जिस प्रकार एक चंद्रमा सारे अंधकार को नष्ट कर देता है और लाखों तारे मिलकर भी ऐसा नहीं कर पाते हैं।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वर:।
मृत: स चाऽल्पदु:खाय यावज्जीवं जडो दहेत्।।

मूर्ख व्यक्ति के संदर्भ में चाणक्य विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मूर्ख एवं विद्यारहित मनुष्य जीवन भर माता-पिता के लिए कष्ट और पीड़ा का कारण बनता है। इसलिए उचित यही है कि ऐसा पुत्र दीर्घायु होने के स्थान पर जन्म लेते ही मर जाए। यद्यपि इससे उसके माता-पिता को अल्पकालीन कष्ट होगा, लेकिन वे भविष्य के दीर्घकालीन कष्ट से मुक्त हो जाएँगे। इतिहास में भी ऐसी अनेक मूर्ख संतानों का उल्लेख है, जिनके कारण विशालतम साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गए।

कुग्रामवास: कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायम्।।

बुरे एवं बदनाम गाँव में निवास करना, कुलहीनों की सेवा करना, क्रोधी पत्नी, मूर्ख पुत्र तथा विधवा कन्या—इन छह कारणों को चाणक्य ने शरीर को दु:ख रूपी अग्नि से तप्त करनेवाला माना है। इसलिए वे कहते हैं कि सज्जन पुरुष को इनका यथासंभव उपाय कर लेना चाहिए।

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न च गुर्विणी।
कोऽर्थ: पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्।।

जो बाँझ गाय दूध नहीं देती, उसे घर में रखने का कोई लाभ नहीं है। इसी प्रकार जो पुत्र विद्यारहित और माता-पिता का आज्ञाकारी न हो, ऐसे पुत्र को त्याग देना ही उचित है, अन्यथा परिवार को अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं।

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च॥

संसार में सभी प्राणी किसी-न-किसी दुःख से पीड़ित हैं। ऐसे मनुष्यों को केवल गुणी संतान, पतिव्रता पत्नी तथा सज्जन पुरुषों की संगति से ही सुख और शांति का अनुभव होता है। इसलिए चाणक्य ने मनुष्यों को विद्वान् और सज्जन पुरुषों की संगति करने का परामर्श दिया है। उनके अनुसार, इसी में मानव-सुख निहित है।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥

चाणक्य ने राजा की आज्ञा को आदेश के समान कहा है, जिसे बार-बार दोहराया नहीं जाता। इसी प्रकार उन्होंने विद्वानों और पंडितों के संदर्भ में कहा है कि वे एक बार जो कह देते हैं, उस पर स्थिर रहते हैं। कन्यादान भी केवल एक बार किया जाता है। इसलिए जो मनुष्य अच्छा काम करना चाहता है, उसे एक बार में ही कर लेना चाहिए।

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभी रणः॥

विभिन्न कार्यों हेतु व्यक्तियों की संख्या निश्चित करते हुए चाणक्य ने कहा है कि तपस्या, पूजा-अर्चना एवं पाठ का अध्ययन अकेले ही करना चाहिए। एक से अधिक संख्या होने पर इसमें बाधाएँ उत्पन्न हो जाएँगी। इसके विपरीत दो व्यक्तियों के बीच में पढ़ाई अच्छी तरह से होगी। इससे अधिक संख्या होने की स्थिति में पढ़ाई की अपेक्षा बातों की अधिकता रहेगी। गायन हेतु तीन व्यक्ति ही पर्याप्त हैं, जबकि यात्र के लिए चार व्यक्ति उपयुक्त हैं। इसी प्रकार खेतीबाड़ी के लिए पाँच व्यक्ति तथा युद्ध हेतु अधिक-से-अधिक लोगों की आवश्यकता होती है।

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी॥

आदर्श पत्नी के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि जो स्त्री पवित्र, चतुर, समझदार हो जो पतिव्रत-धर्म का विधिवत् पालन करे जो केवल पति से ही प्रेम करे जिसकी वाणी सदैव सत्य वचन बोले तथा असत्य का परित्याग करे, केवल वही नारी मान-सम्मान के योग्य तथा घर-परिवार के लिए उपयुक्त कही गई है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता॥

जिस प्रकार संतान के बिना घर सूना-सूना लगता है, उसी प्रकार मित्रें एवं सगे-संबंधियों के बिना मनुष्य को एकाकीपन का अनुभव होता है। लेकिन मूर्ख, निर्धन एवं दरिद्र मनुष्य सदैव स्वार्थ-सिद्धि में लगे रहते हैं, इसलिए उनके हृदय में किसी के लिए भी प्रेम, ममता या करुणा का भाव नहीं होता। यही कारण है कि उनके लिए सारा संसार ही रिक्त होता है, क्योंकि कोई भी उनके निकट आने से बचता है।

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्।।

चाणक्य के अनुसार, अभ्यास के बिना विद्वान् भी शास्त्रें का यथोचित वर्णन नहीं कर पाता और लोगों के बीच उपहास का पात्र बन जाता है। ऐसी स्थिति में अपमान मृत्यु से अधिक कष्टप्रद होता है। इसलिए जो विद्वान् निरंतर अभ्यास नहीं करता, उसके लिए शास्त्र भी विष के समान हो जाते हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्ति की पाचन-शक्ति क्षीण है—अर्थात् जो भोजन को ठीक से नहीं पचा सकते, उनके लिए बढ़िया-से-बढ़िया भोज्य पदार्थ भी विष-तुल्य हैं। चूँकि सभा एवं गोष्ठियों में दरिद्र का सदैव अपमान होता है, इसलिए ऐसे स्थान उसके लिए विष के समान हैं। वृद्ध के लिए युवा पत्नी विष की भाँति होती है। ऐसी स्थिति में युवती का आचरण वृद्ध के लिए अत्यंत कष्टदायक और अपमानग्रस्त होता है।

त्यजेत् धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत् क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान् बान्धवांस्त्यजेत्।।

इस श्लोक के माध्यम से चाणक्य मनुष्यमात्र को सावधान करते हुए कहते हैं कि जिस धर्म में दया का भाव नहीं होता, उसे कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए; जो व्यक्ति विद्वान् न हो, उसे गुरु के रूप में न मानें; जो स्त्री अत्यंत क्रोधी हो, उसे पत्नी-रूप में कभी ग्रहण न करें। इसी प्रकार जिन बच्चों में प्रेम का अभाव होता है तथा जिन मित्रें को सच्ची मित्रता का ज्ञान नहीं होता, उन्हें कभी भी अपना प्रिय एवं विश्वासपात्र न मानें।

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बन्धनं जरा।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा।।

वृद्धावस्था के बारे में चाणक्य ने कहा है कि ध्यानमग्न होकर निरंतर चलने, घोड़ों को खूँटे से बाँधने, स्त्रियों को यौन-सुख से वंचित रखने तथा वस्त्रें को अधिक देर तक धूप में डाले रखने से बुढ़ापे का आगमन होता है। इसलिए ऐसा करने से बचें।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययऽऽगमौ।
कश्चाऽहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः।।

चाणक्य के अनुसार, मनुष्य को कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। हमारा समय कैसा चल रहा है, कौन हमारे मित्र और कौन शत्रु हैं, हमारा निवास-स्थान कैसा है, हमारी आय और व्यय कितना है, हमारी शक्ति कितनी है—ये सब बातें ही मनुष्य के चिंतन और मनन का केंद्रबिंदु होनी चाहिए। इन्हें ध्यान में रखकर आचरण करनेवाला मनुष्य जीवन में कभी असफलता का मुख नहीं देखता।

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः।।

जन्म देनेवाली माँ, यज्ञोपवीत संस्कार करवानेवाला ब्राह्मण, विद्या प्रदान करनेवाला गुरु, अन्न प्रदान करनेवाला मनुष्य तथा भय का नाश करनेवाला— चाणक्य ने इन्हें पितृ-तुल्य माना है। वे कहते हैं कि मनुष्य इनका ऋणी होता है, इसलिए उसे सदैव इनका आदर-सम्मान करना चाहिए। इन्हीं के कारण वह उपर्युक्त पाँच स्थितियों में पुनः जन्म प्राप्त करता है।

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः॥

माता के संदर्भ में चाणक्य ने राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता तथा स्वयं की माता को मनुष्य की पाँच माताएँ कहा है। वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को इनका यथोचित आदर-सम्मान करना चाहिए। इनके प्रति कुदृष्टि का भाव रखकर वह घोर नरक का भागी बनता है। अतः इनका न तो कभी निरादर करना चाहिए और न ही इन पर बुरी दृष्टि डालनी चाहिए।

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनः॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का जन्म दो बार होता है-एक बार माता के गर्भ से और दूसरी बार गुरु द्वारा ज्ञान दिए जाने पर। इसलिए इन्हें द्विजाति कहा जाता है। इनका आराध्य देव अग्नि है। इसके विपरीत, मुनियों के देवता उनके हृदय में निवास करते हैं। अल्प-बुद्धिवाले मनुष्य के लिए प्रतिमाओं में देवता वास करते हैं। लेकिन जो मनुष्य संपूर्ण जगत् को एक समान भाव से देखते हैं, उनके देवता जगत् के कण-कण में विद्यमान होते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः॥

गुरु के विषय में चाणक्य कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए अग्नि ही गुरु के समान है। चूँकि ब्राह्मण चारों वर्णों द्वारा पूजनीय है, इसलिए वह सबका गुरु है। इसी प्रकार स्त्रियों के लिए उनके पति ही परम पूजनीय देवता और गुरु हैं। लेकिन चाणक्य ने अतिथि को सभी के लिए सम्माननीय और पूजनीय कहा है। इस संदर्भ में वे तर्क देते हुए कहते हैं कि अतिथि केवल आतिथेय का कल्याण ही चाहता है। उसमें उसका कोई स्वार्थ निहित नहीं होता। इसलिए वह श्रेष्ठ है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
यथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

चाणक्य कहते हैं कि स्वर्ण की शुद्धता को जाँचने-परखने के लिए उसे तेज अग्नि में तपाया जाता है ठोका, पीटा एवं काटा जाता है। इससे वह और भी निखर उठता है। इसी प्रकार दान-पुण्य, गुण-शील, त्याग-कर्म तथा आचरण द्वारा सात्त्विक मनुष्य को शुद्धता की कसौटी पर परखा जाता है। जो मनुष्य इन सभी गुणों से युक्त होता है, वह स्वर्ण की भाँति दमक उठता है।

तावद् भयेषु भेतव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया॥

संकट के समय बुद्धिमान व्यक्ति को क्या करना चाहिए—इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जब तक मुसीबतें, परेशानियाँ और संकट दूर रहते हैं तब तक बुद्धिमान व्यक्तियों को उनसे डरना चाहिए। लेकिन एक बार जब वे उनसे घिर जाएँ तो उन्हें पूरी निडरता, साहस और धैर्य के साथ उनका सामना करना चाहिए। केवल इसी तरह वे उन्हें परास्त करके उनसे छुटकारा पा सकते हैं।

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः।
न भवन्ति समाः शीले यथा बदरकण्टकाः॥

मनुष्य-स्वभाव में भिन्नता का उदाहरण देते हुए चाणक्य कहते हैं कि एक ही वृक्ष और एक ही टहनी पर उगनेवाले बेर एवं काँटे स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। बेर के सेवन से जहाँ प्राणी को मिठास एवं तृप्ति का अनुभव होता है, वहीं काँटों की छुअन पीड़ा और चुभन देती है। इसी प्रकार एक ही नक्षत्र अथवा एक ही समय में एक ही गर्भ से उत्पन्न होनेवाले बच्चों का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए मनुष्य को यह तथ्य भली-भाँति समझ लेना चाहिए, तभी उसे सुख की प्राप्ति होगी।

निःस्पृहो नाऽधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः।
नाऽविदग्धः प्रियं ब्रूयात् स्फुटवक्ता न वञ्चकः॥

व्यक्ति की पहचान के विषय में चाणक्य ने कहा है कि जो मनुष्य अधिकार के पीछे भागनेवाला होता है, वह लोभी एवं लालची होता है। रूप-सौंदर्य एवं शंृगार को महत्त्व देनेवाले मनुष्य का स्वभाव कामुक होता है। मूर्ख व्यक्ति स्वभाववश कभी मृदुभाषी नहीं होते। इसी प्रकार जो व्यक्ति स्पष्टवक्ता एवं सत्यभाषी होते हैं, उनमें मक्कारी, धूर्तता और धोखेबाजी का लेशमात्र भी नहीं होता।

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः।
वाराऽऽङ्गनाः कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः॥

मानव-स्वभाव की विवेचना करते हुए चाणक्य कहते हैं कि कोई भी मनुष्य स्वयं से श्रेष्ठ व्यक्ति को देखकर प्रसन्न नहीं होता, अपितु उससे ईर्ष्या और घृणा करने लगता है। मूर्ख व्यक्ति ईर्ष्यावश ही विद्वानों से घृणा करने लगते हैं, उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। ईर्ष्या के कारण ही आलसी और दरिद्र व्यक्ति सदैव धनवान् के प्रति शत्रुता का भाव रखते हैं। इसी प्रकार पतिव्रताओं को देखकर वेश्याएँ तथा सुहागिनों को देखकर विधवाएँ ईर्ष्या से भर उठती हैं। यद्यपि विद्वानों को मूर्खों की, धनवान् को दरिद्रों की, पतिव्रता को वेश्या की तथा सुहागिन को विधवा के ईर्ष्यायुक्त व्यवहार की उपेक्षा कर देनी चाहिए। लेकिन मूर्खता और ईर्ष्या के वशीभूत होकर वे स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करते हुए परस्पर दोषारोपण करते हैं।

आलस्योपहता विद्या परहस्तगताः स्त्रियः।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम्॥

चाणक्य के अनुसार, आलस्य और अनाभ्यास विद्वानों की बुद्धि को भी भ्रष्ट करके उनके ज्ञान का नाश कर देता है। दूसरों के अधिकार में गई स्त्रियाँ अतिशीघ्र नष्ट हो जाती हैं। बीजों के अभाव या कमी के कारण फसल भरपूर नहीं होती। इसी प्रकार सेनापति के अभाव में सेना युद्ध में विजयश्री कदापि प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने हेतु साध्य के महत्त्व पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते॥

चाणक्य कहते हैं कि केवल निरंतर अभ्यास द्वारा प्राप्त विद्या की रक्षा की जा सकती है। इसी प्रकार मनुष्य केवल अपने कर्म, आचरण और स्वभाव द्वारा ही कुल को मान, सम्मान और गौरव के योग्य बनाता है। इसके लिए उच्च जाति, कुल या धन की अधिकता कोई महत्त्व नहीं रखती। अच्छे मनुष्यों को उनके गुणों द्वारा पहचाना जाता है, जबकि नेत्रें से क्रोध का ज्ञान होता है।

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सन्नार्या रक्ष्यते गृहम्॥

धन, योग, मृदु वाणी और पतिव्रता स्त्री के महत्त्व का वर्णन करते हुए चाणक्य ने कहा है कि धन द्वारा धर्म की रक्षा, योग द्वारा विद्या की रक्षा, मृदु और कोमल वाणी द्वारा राजा की रक्षा तथा पतिव्रता स्त्री द्वारा घर-गृहस्थी की रक्षा होती है। इनके अभाव में धर्म, विद्या, राजा और घर-परिवार कभी सुरक्षित नहीं रह सकते।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा।
अन्यथा कुवचः शान्तं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा॥

वैदिक ज्ञान, शास्त्रें की श्रेष्ठता और सात्त्विक मनुष्यों की निंदा करनेवाले मनुष्य लोक व परलोक में भयंकर दुःख भोगते हैं। ऐसे मनुष्य न तो समाज में अपने लिए मान-सम्मान प्राप्त कर पाते हैं और न ही मृत्यु के बाद उन्हें ईश्वर-स्तुति का लाभ होता है। ऐसे लोगों की संगति करनेवालों को भी समान रूप से दोषी होकर उपर्युक्त दुःख भोगना पड़ता है।

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी॥

इस श्लोक में दान, शील, ज्ञान और सद्भावना के संदर्भ में चाणक्य ने कहा है कि दान ही दरिद्रता को नष्ट करने का सशक्त साधन है। शील द्वारा दुर्गति और कष्टों का अंत होता है। ज्ञान मनुष्य की मूर्खता और अज्ञानता को समाप्त कर देता है, जबकि सद्भावना द्वारा मनुष्य के समस्त भय नष्ट हो जाते हैं। इसलिए सुखी जीवन हेतु मनुष्यों को उपर्युक्त चारों गुणों को स्वयं में उत्पन्न करना चाहिए।

नाऽस्ति कामसमो व्याधिर्नाऽस्ति मोहसमो रिपुः।
नाऽस्ति कोपसमो वह्निर्नाऽस्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥

मनुष्य-जीवन में काम, मोह और क्रोध जैसे विकारों का उल्लेख करते हुए चाणक्य कहते हैं कि काम मनुष्य का सबसे प्रबल शत्रु है। यह एक ऐसा असाध्य रोग है, जिसके वशीभूत होकर मनुष्य बुद्धि-विवेक गँवा देता है, साथ ही उसका शरीर शीघ्रता से निर्बलता की ओर अग्रसर हो जाता है। मोह शत्रु के समान मनुष्य का नाश कर देता है। पुत्र-मोह के वशीभूत होकर ही महाभारत जैसा विनाशकारी युद्ध हुआ। इसी प्रकार क्रोध भयंकर अग्नि के समान है, जो अपनी लपटों से मनुष्य को बार-बार प्रताड़ित करता है। इसके प्रभाव से मनुष्य का मन-मस्तिष्क क्षण-प्रतिक्षण जलता रहता है। इन विकारों के नाश हेतु चाणक्य ने ज्ञान को सर्वोत्तम साधन कहा है। उनके अनुसार, केवल ज्ञान द्वारा ही इन विकारों को शांत करके सुख की प्राप्ति संभव है।

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाऽशुभम्।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम्॥

अनेक सगे-संबंधी, मित्र, पत्नी, पुत्र आदि होने के बाद भी मनुष्य इस संसार में पूर्णतः अकेला है। अकेले ही उसने जन्म लिया था और उसे अकेले ही इस संसार से जाना है। उसके द्वारा किए गए अच्छे एवं बुरे कर्मों का फल उसे स्वयं ही भोगना है। इसमें कोई भी उसका भागीदार नहीं है। उसके सुख-दुःख केवल उसी के हैं उनका प्रभाव केवल उसी पर पड़ेगा। इस संसार रूपी पथ पर चलते हुए उसे अकेले ही मोक्ष की ओर अग्रसर होना है।

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम्।
जिताऽक्षस्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥

ऐसे ब्राह्मण के लिए स्वर्ग का सुख भी निरर्थक है, जो कर्म करने को महत्त्व देता है जबकि क्षत्रिय तलवार की धार पर चलकर स्वयं को सम्मानित और गौरवान्वित अनुभव करता है, इसलिए उसे जीवन का मोह नहीं होता। समस्त इंद्रियों को जीत लेनेवाला मनुष्य रूप-सौंदर्य से परिपूर्ण युवती को देखकर भी भावहीन रहता है। उस पर काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारों का कभी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी तरह संसार से निर्लिप्त और निर्लोभी व्यक्ति के लिए धन एवं मणि-माणिक्य तृण अर्थात् तिनके की भाँति हैं।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च॥

सच्चे मित्र का परिचय देते हुए चाणक्य स्पष्ट करते हैं कि परदेश जानेवाले व्यक्तियों के लिए विद्या और घर-परिवार के सदस्यों के लिए केवल पतिव्रता नारी ही सच्ची मित्र है। व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति के लिए औषधि उसका वास्तविक तथा सच्चा मित्र है। चूँकि मृत्यु के बाद व्यक्ति के साथ केवल उसके कर्म और धर्म ही साथ जाते हैं, इसलिए मृतक का परम हितैषी उसका धर्म होता है। अतः मनुष्य को जीवित रहते हुए अनेक सत्कर्म करने चाहिए, जिससे परलोक में उसे कष्ट न भोगने पड़ें।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवाऽपि च॥

दान की उपयोगिता और उसके लिए उपयुक्त व्यक्ति का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र में वर्षा करना व्यर्थ है, दिन के प्रकाश में दीपक जलाने की कोई उपयोगिता नहीं है, उसी प्रकार ऐसे मनुष्य को भोजन करवाना व्यर्थ है, जिसका पेट भरा हुआ है—अर्थात् जो पहले से तृप्त है किसी धनवान् व्यक्ति को दान देना निरर्थक है। चाणक्य कहते हैं कि जिस तरह खेत-खलिहानों में वर्षा की तथा अंधकार में दीपक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भोजन केवल ऐसे व्यक्ति को करवाना चाहिए, जो भूखा हो दान ऐसे मनुष्य को दें, जो दरिद्र हो। इसके अनुसार कार्य करने पर ही मनुष्य द्वारा दिए गए दान एवं पुण्य कार्य फलित होते हैं।

नाऽस्ति मेघसमं तोयं नाऽस्ति चात्मसमं बलम्।
नाऽस्ति चक्षुःसमं तेजो नाऽस्ति धान्यसमं प्रियम्॥

चाणक्य ने स्वास्थ्य एवं उपयोगिता की दृष्टि से वर्षा के जल को सबसे शुद्ध और पवित्र माना है। चूँकि आत्मबल द्वारा इंद्रियों और शरीर को नियंत्रित किया जा सकता है, इसलिए उन्होंने आत्मबल को बलों में सबसे श्रेष्ठ कहा है। नेत्रें द्वारा प्राणी ईश्वर द्वारा रचित संसार को देखने के योग्य बनता है, अतः नेत्र-ज्योति से बढ़कर संसार में कोई दूसरा प्रकाश नहीं है। अन्न जैसा स्वादिष्ट और रुचिकर भोज्य पदार्थ कोई दूसरा नहीं है। यह मनुष्य की क्षुधा

शांत कर उसे बल प्रदान करता है उसे खाने से मनुष्य कभी थकता नहीं।

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः॥

विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न इच्छाओं के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि निर्धन एवं दरिद्र व्यक्ति की इच्छा धन-प्राप्ति की होती है पशु बोलने की इच्छा रखते हैं साधारण मनुष्य स्वर्ग की आकांक्षा से परिपूर्ण होते हैं देवगण एवं साधुजन की एकमात्र इच्छा मुक्ति की होती है। इस तरह मनुष्य किसी-न-किसी इच्छा से संतप्त रहकर निरंतर उसी का चिंतन-मनन करते हैं और प्राप्त वस्तुओं को भी तुच्छ समझने लगते हैं।

सत्येन धार्यते पृथिवी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

इस श्लोक द्वारा सत्य-बल का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि ब्राह्मण के ब्रह्मत्व का मूल आधार सत्य है। सत्य पर ही यह संपूर्ण पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य का तेज ही आकाश में सूर्य के रूप में प्रकाशित होता है। सत्य के बल से ही वायु चलती है तथा दिन, रात व मौसम में परिवर्तन होता है। सत्य की महिमा को और अधिक विस्तार देते हुए चाणक्य कहते हैं कि सत्य की शक्ति ने ही इस संपूर्ण सृष्टि को स्थिर किया हुआ है। सत्य के नष्ट होने पर प्रलयकाल उत्पन्न होता है और संपूर्ण ब्रह्मांड जल में डूब जाता है। अतः चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को सत्य का पालन करते हुए उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित-यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥

धर्म की महत्ता बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि यद्यपि यह संसार नाशवान् है, लेकिन धर्म का कभी नाश नहीं होता। प्राण, यौवन, लक्ष्मी, जीवन-सभी एक-एक कर नष्ट हो जाते हैं। परंतु धर्म अजर, अमर और शाश्वत है कोई भी उसे नष्ट नहीं कर सकता। यद्यपि मनुष्य जीवन भर अनेक बहुमूल्य वस्तुओं, धन-संपदा एवं सगे-संबंधियों से घिरा रहता है, तथापि मृत्यु के बाद धर्म-कर्म के अतिरिक्त सभी उसका साथ छोड़ देते हैं। इसलिए मनुष्य को सदैव धर्म के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए। सांसारिक नश्वर वस्तुओं का मोह उसे विचलित कर धर्म के मार्ग से विमुख करने का प्रयत्न करता है, इसलिए उनका त्याग करना ही उचित है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से रात का अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार धर्म-कर्म व्यक्ति के लोक और परलोक के समस्त दुःखों का नाश कर देता है।

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।
चतुष्पदां श्रृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने धूर्तों की पहचान को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि मनुष्यों में नाई सबसे धूर्त होता है। इसी प्रकार पक्षियों में कौआ, पशुओं में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन सबसे धूर्त व मक्कार होती है। ये बिना किसी कारण के लोगों का कार्य बिगाड़ने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इसलिए ऐसे लोगों की संगति एवं मित्रता से सज्जन मनुष्य को बचना चाहिए।

छठा अध्याय

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानामवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

इस श्लोक में चाणक्य ने वैदिक शास्त्रें के अध्ययन और श्रवण की महत्ता को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि धर्म के मर्म को समझने के लिए वैदिक शास्त्रें का ज्ञान आवश्यक है। इसके माध्यम से मनुष्य धर्म के तत्त्व को जीवन में उतार सकता है। वैदिक ज्ञान पाप कर्मों में लिप्त मनुष्य की बुद्धि को भी सन्मार्ग की ओर अग्रसर कर देता है। इसके प्रभाव से साधारण मनुष्य भी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। वैदिक ज्ञान की शक्ति द्वारा ही साधुजन संपूर्ण जगत् का कल्याण करते हुए मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जिस प्रकार वैदिक ज्ञान का अध्ययन परम कल्याणकारी होता है, उसी प्रकार उनका श्रवण भी मानव-मन और बुद्धि को निर्मल कर देता है। इसलिए यदि मनुष्य के लिए शास्त्रें का अध्ययन संभव न हो तो उसे उनका श्रवण अवश्य करना चाहिए। इससे वे वैदिक ज्ञान को और अधिक गहराई से समझ सकते हैं।

पक्षिणां काकश्चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः।
मुनीनां कोपी चाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः॥

निंदक के विषय में चाणक्य कहते हैं कि यद्यपि पक्षियों में कौआ, पशुओं में कुत्ता तथा साधुओं में पाप में निर्लिप्त व्यक्ति सबसे अधिक दुष्ट और अधर्मी होता है लेकिन निंदक इनसे भी अधिक पापी और चांडाल प्रवृत्ति का होता है। यद्यपि निंदा करने से कुछ प्राप्त नहीं होता, किंतु निंदक सदैव निंदा-रस का पान करता है। निंदा करने के कारण उसके पापों में निरंतर वृद्धि होती है और एक दिन उसके पाप उसका सर्वनाश कर देते हैं। इसलिए चाणक्य ने मनुष्यों को सावधान करते हुए उन्हें निंदा से बचने की सलाह दी है।

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति॥

स्त्रियों की दशा पर चिंतन करते हुए चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक की रचना की। वे कहते हैं कि जिस प्रकार भस्म की रगड़ से काँसे का पात्र चमक उठता है, खटाई से ताँबे का बरतन शुद्ध हो जाता है, तेज बहाव से नदी निर्मल हो जाती है, उसी प्रकार रजस्वला होने के बाद स्त्री भी शुद्ध एवं पवित्र होकर गर्भ-धारण करने योग्य हो जाती है। परंतु जिन स्त्रियों का रजोधर्म नहीं होता अथवा जो स्त्रियाँ गर्भ-धारण करने से वंचित या अयोग्य होती हैं, समाज में उन्हें उचित आदर-सम्मान प्राप्त नहीं होता।

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः।
भ्रमन् सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि भ्रमण करनेवाले राजा, ब्राह्मण एवं योगी सबके लिए आदर के पात्र

होते हैं। इसके विपरीत भ्रमण करनेवाली नारी समाज में भ्रष्ट और दुष्टा मानी जाती है। इस संदर्भ में वे विस्तृत वर्णन करते हुए कहते हैं कि चूँकि राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा के दुःख-दर्द एवं परेशानियों को जाने। उसके अधीनस्थ अधिकारी प्रजा के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, उनकी भलाई के लिए कौन-कौन से उचित प्रयास कर रहे हैं—ये सब जानना राजा के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। इसलिए प्रजा के साथ सीधे संवाद हेतु उसे गुप्त रूप से भ्रमण करते रहना चाहिए। यदि ब्राह्मण भ्रमण करता रहे तो उसे यजमानों की कमी नहीं रहती। इसके साथ-साथ समाज में उसका आदर-सम्मान भी निरंतर बढ़ता जाता है। साधु-संतों एवं योगियों का भ्रमण उनके ज्ञान और विवेक को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम बनता है। इससे समाज के पिछड़े और अज्ञानी मनुष्य भी उनकी ज्ञानयुक्त वाणी का श्रवण कर सन्मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। लेकिन नारी के लिए अनावश्यक भ्रमण उसे नरक की ओर ले जानेवाला होता है। दीन-हीन एवं साधनरहित नारी गलत संगति में पड़कर अपना चरित्र और सम्मान-दोनों गँवा बैठती है। इसलिए स्त्रियों को अनावश्यक भ्रमण की प्रवृत्ति से दूर रहना चाहिए।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥

'भाग्य का लिखा कोई मिटा नहीं सकता', यह उक्ति प्राचीनकाल से ही समाज के विभिन्न हिस्सों में सुनने में आती है। इस उक्ति द्वारा भाग्य की सर्वोच्चता और उसके प्रभाव को दरशाया गया है। चाणक्य ने शायद इसी उक्ति का गहन अध्ययन कर इस श्लोक की रचना की है। भाग्य के विषय में वे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मनुष्य जैसे भाग्य के साथ जन्म लेता है, उसकी बुद्धि भी उसी के अनुसार हो जाती है। उसका जीवन, क्रियाकलाप, स्थिति-सबकुछ भाग्य के अनुरूप ही होता है। इतना ही नहीं, उसे भाग्यानुसार ही सगे-संबंधी एवं मित्र आदि मिलते हैं। मनुष्य को वही सब मिलता है, जो उसके भाग्य में लिखा होता है। परंतु इसके साथ ही चाणक्य का यह भी मानना है कि स्वयं को कभी भी भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। मनुष्य का धर्म है—पुरुषार्थ करना। इसलिए उसे सदैव पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥

काल के बारे में चाणक्य कहते हैं कि संसार में केवल समय अर्थात् मृत्यु ही सबसे शक्तिशाली है। यह इतना प्रबल होता है कि ब्रह्मांड की किसी भी वस्तु को पल भर में नष्ट कर सकता है। प्रलय के समय जब संपूर्ण ब्रह्मांड जलमग्न होकर अदृश्य हो जाता है, उस समय भी काल जाग्रत् होता है। काल का चक्र निरंतर गतिशील रहता है। इसके समक्ष बड़े-से-बड़ा ज्ञानी, विद्वान् और पुण्यात्मा भी असहाय हो जाता है, वीर और निर्भय क्षत्रिय भी परास्त हो जाता है। मनुष्य-जीवन की चारों अवस्थाएँ काल के अनुरूप ही कार्य करती हैं। काल को जीतना सबके लिए असंभव है। इसलिए मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए नित्य पुण्य कर्म अर्जित करता रहे। इन पुण्य कर्मों के प्रभाव से ही मनुष्य अपने परलोक को सुधार सकता है।

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो ह्यर्थी दोषान् न पश्यति॥

जन्म से नेत्रहीन व्यक्ति को कुछ दिखाई नहीं देता। परंतु जो व्यक्ति कामांध अर्थात् काम के वशीभूत होकर नेत्रहीन हो जाता है, वह भी देखने की शक्ति गँवा बैठता है। नेत्र-दृष्टि होते हुए भी वह व्यक्ति भरी सभा में नीच और निंदनीय आचरण करने लगता है। इसी प्रकार मद अर्थात् नशे में डूबे हुए व्यक्ति भी नेत्रहीनों की श्रेणी में

सम्मिलित किए जाते हैं। नशे के प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने दिमाग का संतुलन खो बैठता है उसकी सोचने-समझने की शक्ति नष्ट हो जाती है और वह अनर्गल बातों द्वारा निंदा एवं परिहास का पात्र बन जाता है। इसी प्रकार चाणक्य ने स्वार्थी एवं पापी व्यक्ति को भी नेत्रहीन कहा है। उनके अनुसार, ऐसा व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए किसी का भी अहित करने से पीछे नहीं हटता। उसके लिए पाप और पुण्य—दोनों एक समान हो जाते हैं। अपने स्वार्थ के समक्ष उसे सबकुछ तुच्छ नजर आने लगता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते।।

जिस प्रकार 'गीता' में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मों का उपदेश दिया है, उसी प्रकार इस श्लोक द्वारा चाणक्य रूपी कृष्ण ने भी मानव रूपी अर्जुन को कर्मों का ज्ञान प्रदान किया। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है। अच्छा या बुरा-वह जो भी कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे फल प्राप्त होता है। कर्म ही उसे माया के बंधनों में जकडे रहते हैं। इसके फलस्वरूप वह बार-बार विभिन्न योनियों के माध्यम से संसार में जन्म लेता है। यद्यपि मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है, तथापि वह उसका इच्छित फल नहीं प्राप्त कर सकता है। मनुष्य का कार्य केवल कर्म करना है लेकिन कर्मों के अनुसार उसका फल ईश्वर ही प्रदान करता है। इसलिए मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हेतु स्वयं ही प्रयास करने चाहिए।

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा।।

पापों के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि प्रजा द्वारा किए जानेवाले पापों का फल केवल राजा को भोगना पड़ता है। राजा द्वारा किए गए पापों का बोझ पुरोहित ढोता है। पत्नी के पाप पति पर तथा शिष्यों के पाप गुरु पर प्रभावकारी होते हैं। इसलिए चाणक्य ने राज्य में होनेवाले पाप-कर्म को रोकने पर जोर दिया है। उनके अनुसार, राजा का यह कर्तव्य होता है कि वह अपने राज्य में होनेवाले छोटे-बड़े सभी पापों को नष्ट कर दे, स्वेच्छाचारिता तथा पापाचार को फैलने न दे। इससे प्रजा भयमुक्त होकर जीवन-यापन करेगी तथा राजा को उसका शुभ फल प्राप्त होगा। इस प्रकार उन्होंने पाप-कर्म पर अंकुश लगाकर राज्य में धर्म की स्थापना पर जोर दिया है।

ऋणकर्ता पिता शत्रुः माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः।।

मनुष्य का वास्तविक शत्रु कौन है, इस विषय पर चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक की रचना की। इसके अनुसार, संतान पर ऋण का बोझ छोड़कर प्राण त्यागनेवाला पिता ही उसका वास्तविक शत्रु है। जो स्त्री व्यभिचारिणी होकर पाप-कर्म में लिप्त रहती है, वह अपनी संतान की शत्रु होती है। इसी प्रकार अत्यधिक सुंदर स्त्री पति के लिए तथा मूर्ख एवं हठी पुत्र पिता के लिए अनिष्टकारी शत्रु होता है। इसके विपरीत पुरुषार्थ करनेवाला पिता, धर्म के अनुरूप आचरण करनेवाली माता, पतिव्रता पत्नी तथा विद्वान् पुत्र मनुष्य के सच्चे हितैषी होते हैं। वस्तुतः इन्हीं के सहयोग से मनुष्य का जीवन सन्मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दोऽनुवृत्तेन यथार्थत्वेन पण्डितम्।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने विभिन्न व्यक्तियों को वश में करने का उपाय बताया है। वे कहते हैं कि जिस व्यक्ति का स्वभाव लोभी प्रवृत्ति का हो, उसे लालच द्वारा ही वश में करना चाहिए। हठी या अभिमानी व्यक्ति विनम्रता द्वारा वश में किए जा सकते हैं। मूर्ख एवं बुद्धिहीन व्यक्ति की यदि इच्छा पूर्ण कर दी जाए तो उसे वश में करना अत्यंत सरल हो जाता है। इसी तरह विद्वान् व्यक्ति को वश में करने के लिए उसे वास्तविक स्थिति की सही जानकारी देकर अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। इस प्रकार चाणक्य ने मनुष्यों की कमजोरियों एवं आवश्यकताओं को पहचानकर उन्हें वश में करने का गुरुमंत्र दिया है।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दारा न कुदारदारा:।।

जिस राज्य में पापों एवं पापियों का वास हो, वहाँ निवास करने से अच्छा यही है कि मनुष्य किसी एकांत स्थान में वास करे। जो मित्र अविश्वासी, कपटी और दुष्ट हो, उसकी मित्रता की अपेक्षा मित्रहीन रहना अधिक उचित है, अन्यथा एक दिन मित्रता ही मनुष्य का सर्वनाश कर देगी। इसी प्रकार बुरे एवं चरित्रहीन शिष्यों तथा व्यभिचारिणी पत्नी के बिना रहना अधिक श्रेयस्कर है। ऐसे लोग उस कोयले के समान होते हैं, जो सत्पुरुषों के आश्रय में रहकर उनके व्यक्तित्व को ही कलंकित करते हैं। जो मनुष्य इनसे दूर रहता है, वही जीवन के वास्तविक सुखों को भोगता है।

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेण कुतोऽस्ति निर्वृत्तिः।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने राजा, मित्र, शिष्य और स्त्री के विषय में अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किए हैं। वे कहते हैं कि जिस राज्य का राजा अत्यंत दुष्ट, अधर्मी और पापी हो, वहाँ की प्रजा कभी सुखपूर्वक नहीं रह सकती। अतः मनुष्य को सदाचारी राजा के राज्य में ही निवास करना चाहिए। जो मित्र धोखेबाज और विश्वासघाती हों, उनसे सहयोग और स्नेह की आशा करना व्यर्थ है। मित्रता केवल उसी से करें, जो योग्य और विश्वासी हो। जो स्त्री यथावत् पतिव्रत धर्म का पालन नहीं करती तथा जो कपट बुद्धि की होती है, उससे प्रेम और सुख की कभी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए किसी अच्छे कुल की सुशील युवती से विवाह करना चाहिए। इससे दांपत्य सुख में निरंतर वृद्धि होती है। इसी प्रकार चरित्रहीन और अधर्मी शिष्य सदैव यश को कलंकित करते हैं। ऐसे में उनका न होना ही श्रेष्ठ है।

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पञ्च शिक्षेच्च षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्।।

पुराणों में कहा गया है कि मनुष्य को जिससे भी कोई शिक्षा या गुण मिले, उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

इस कथन को चाणक्य ने भी स्वीकारा है। उपर्युक्त श्लोक द्वारा उन्होंने मनुष्य को संबोधित करते हुए कहा है कि ईश्वर ने जगत् के सभी प्राणियों को एक-न-एक गुण अवश्य प्रदान किया है। इसलिए मूर्ख या पशुओं से प्राप्त होनेवाले गुणों को भी ग्रहण करने में किसी प्रकार का संकोच या लज्जा अनुभव नहीं होनी चाहिए। इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं कि मनुष्य को सिंह और बगुले से एक-एक, गधे से तीन, मुर्गे से चार, कौए से पाँच तथा कुत्ते से छह गुण ग्रहण करने चाहिए।

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते॥

चाणक्य की दृष्टि में सिंह एक ऐसे महत्त्वपूर्ण गुण से संपन्न है, जिसे मनुष्य को ग्रहण करना चाहिए। वे कहते हैं कि मनुष्य जिस कार्य की जिम्मेदारी ले, उसे पूरी लगन और हिम्मत के साथ संपन्न करे। किसी भी कार्य की जिम्मेदारी लेने से पूर्व मनुष्य को उसके गुण-दोषों को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। इसके बाद पूरी बुद्धिमत्ता और लगन के साथ उसे पूरा करने का प्रयास करना चाहिए। इसी से उसे यश और मान-सम्मान प्राप्त होता है। इसके विपरीत, जो मनुष्य हाथ में लिये गए कार्य को पूरा करने में आलस्य दिखाते हैं या दूसरों को भ्रमित करते हैं, उन पर पुनः कोई भी विश्वास नहीं करता।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः।
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्॥

बगुले में एकाग्रता और धैर्य का गुण होता है। उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने इसी गुण को ग्रहण करने की बात कही है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार बगुला एकाग्रचित्त होकर धैर्यपूर्वक अपने शिकार पर दृष्टि टिकाए रखता है तथा उस समय अपने मस्तिष्क से समस्त विचारों को निकाल देता है, उसी प्रकार विवेकशील और बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी इंद्रियों को नियंत्रित कर एकाग्रचित्त होकर अपने कार्य को संपन्न करे। इससे उसकी सफलता शत-प्रतिशत निश्चित हो जाएगी।

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु।
स्वयमाक्रम्य भुक्तं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्॥

चाणक्य मुर्गे से चार महत्त्वपूर्ण गुणों को ग्रहण करने पर जोर देते हैं। यथा समय जागना, युद्ध के लिए सदैव तत्पर रहना, बंधु-बांधवों को उनका उचित हिस्सा देना तथा मैथुन द्वारा पत्नी को संतुष्ट करना-मुर्गे में इन चार बातों का समावेश होता है। बुद्धिमान और विवेकशील मनुष्य को चाहिए कि वह इन्हें अपने जीवन में उतारें। जिस प्रकार मुर्गा नित्य प्रातःकाल उठकर अपने कार्य में लग जाता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी प्रातःकाल जल्दी उठकर दैनिक कार्यों में जुट जाना चाहिए। इससे एक ओर जहाँ उसका स्वास्थ्य उत्तम रहेगा, वहीं दूसरी ओर उसके कार्य समयानुसार निबटते जाएँगे। मुर्गे में सदैव शत्रुओं से लड़ने की प्रवृत्ति होती है। इसलिए मनुष्य को भी पूरे साहस के साथ शत्रुओं का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। मिल-बाँटकर खाना मुर्गे का एक अन्य गुण है। वह प्रत्येक वस्तु को बाँटकर खाता है। इस गुण के आधार पर मनुष्य को भी सबका हिस्सा समय पर बाँट देना चाहिए। मैथुन-सुख की कमी या असंतुष्टि ही स्त्री को व्यभिचार की ओर धकेलती है। इसलिए मनुष्य को मुर्गे की तरह अपनी पत्नी को मैथुन-सुख से संतुष्ट रखना चाहिए। इससे वह हमेशा सदाचारिणी बनी रहती है।

गूढं च मैथुनं धार्ष्ट्यं काले काले च संग्रहम्।
अप्रमत्तमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात्॥

चाणक्य ने कौए को पाँच गुणों से युक्त बताया है। छिपकर मैथुन करना, दुष्टता एवं ढिठाई, संग्रह की प्रवृत्ति, आलस्य न करना तथा कभी किसी पर विश्वास न करना-ये पाँच गुण कौए में विद्यमान होते हैं, जिन्हें मनुष्य को ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार कौआ छिपकर मैथुन करता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी मैथुन क्रिया छिपकर करनी चाहिए। इसी में उसकी मर्यादा और सम्मान सुरक्षित रहता है। शत्रुओं का प्रतिकार करने के लिए मनुष्य को कौए से दुष्टता और ढिठाई का सबक लेना चाहिए। इससे वह शत्रुओं का पूर्णतः दमन कर देगा। संग्रह की प्रवृत्ति कौए का एक अन्य गुण है, जिसे अपनाकर मनुष्य विपत्तिकाल का दृढ़ता और साहस के साथ सामना कर सकता है। जिस प्रकार कौआ आलस्य से कोसों दूर रहता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी आलस्य का त्याग करके अपनी कार्य-सिद्धि में जुट जाना चाहिए। इससे उस कार्य में सफलता निश्चित हो जाती है। किसी पर विश्वास न करना कौए का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है। इसे अपनाने से मनुष्य पूरी तरह से सुरक्षित हो जाता है। फिर कोई भी उसका अहित नहीं कर सकता।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः॥

अधिक खाने की शक्ति रखना, अभाव की स्थिति में थोड़े से ही संतोष करना, गहरी नींद में सोना, सोते समय भी सजग रहना, स्वामीभक्ति तथा वीरतापूर्वक शत्रुओं का सामना करना-ये छह गुण कुत्ते में विद्यमान होते हैं। चाणक्य ने इन गुणों को मनुष्य के लिए सर्वोत्तम कहा है। वे कहते हैं कि इन गुणों को ग्रहण करने से मनुष्य का स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है, साथ ही मानसिक शांति और सुख भी प्राप्त होता है।

सुश्रान्तोऽपि वहेद् भारं शीतोष्णं न च पश्यति।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात्॥

मूर्खता का प्रतीक गधा भी चाणक्य की दृष्टि में मनुष्य को तीन महत्त्वपूर्ण गुण सिखाता है। बिना थके परिश्रम करते रहना, सर्दी-गरमी की चिंता न करना तथा धैर्य एवं संतोष-इन तीन गुणों के प्रभाव से मनुष्य का जीवन सार्थक हो जाता है। चाणक्य के अनुसार, गधे की तरह मनुष्य को बिना थके निरंतर परिश्रम में लगे रहना चाहिए। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लेगा। सर्दी-गरमी की परवाह न करने से मनुष्य का शरीर समस्त ऋतुओं के अनुरूप ढल जाएगा तथा उसका स्वास्थ्य सदा उत्तम रहेगा। इसी प्रकार धैर्य एवं संतोष का गुण अपनाने से मनुष्य थोड़े में ही संतुष्ट होकर सुखपूर्वक परिवार का पालन-पोषण कर सकता है।

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः।
कार्याऽवस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति॥

उपर्युक्त श्लोक द्वारा इस अध्याय की समाप्ति करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जो मनुष्य उपर्युक्त बीस गुणों को ग्रहण कर लेगा, उसका जीवन सुख से परिपूर्ण और सफल हो जाएगा। इनके प्रभाव से खुशियाँ उसकी दासी बनकर रहेंगी तथा वह निरंतर सफलता का शिखर छूता जाएगा।

सातवाँ अध्याय

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

चाणक्य बुद्धिमान व्यक्ति में सहनशीलता को आवश्यक गुण मानते हैं। उनके अनुसार, व्यक्ति को चाहिए कि धन-हानि से उत्पन्न दुःख के बारे में तथा दुष्ट पत्नी या किसी अन्य द्वारा अपमानित किए जाने की बात वह किसी को न बताए। इसके लिए मनुष्य को सहनशील होना चाहिए। सहनशीलता ही उसे दूसरों के समक्ष उपहास का पात्र बनने से बचाती है। इसलिए सहनशीलता का गुण ग्रहण कर मनुष्य को उपर्युक्त बातों को चुपचाप सहन कर लेना चाहिए।

धन-धान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य स्पष्ट करते हैं कि जो मनुष्य अन्न के क्रय-विक्रय, विद्या अथवा ज्ञानार्जन, खान-पान और लेन-देन के व्यवहार में संकोच करते हैं, उन्हें अनेक समस्याओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए उपयुक्त यही है कि मनुष्य उपर्युक्त कार्यों में कभी भी संकोच का दामन न थामे।

सन्तोषाऽमृत-तृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
न च तद् धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

मनुष्य की इच्छाओं और लालसाओं का कभी अंत नहीं होता। यदि एक इच्छा पूर्ण हो जाए तो अनेक दूसरी इच्छाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। शनैः-शनैः ये इच्छाएँ इतनी प्रबल हो जाती हैं कि मनुष्य पाप-कर्म की ओर अग्रसर हो जाता है। इस संदर्भ में चाणक्य धैर्य और संतोष का उपदेश देते हुए कहते हैं कि मनुष्य को इन दोनों गुणों को भली-भाँति ग्रहण करना चाहिए। इससे उनका मन सदैव तृप्त और शांत रहता है। जीवन में सुख-प्राप्ति का यही सबसे सरल और सहज मार्ग है। इसके विपरीत जो व्यक्ति लोभ और स्वार्थ में डूबे रहते हैं, वे जीवन भर वास्तविक सुखों से वंचित रहते हैं। उनका मस्तिष्क तनाव से घिरकर सदा अशांत रहता है। अतः मनुष्य को इन प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने तपदानयोः॥

स्त्री, भोजन और धन-ये तीन वस्तुएँ मनुष्य को परम संतोष प्रदान करती हैं। इस तथ्य को चाणक्य भी स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि पत्नी चाहे कुरूप हो या रूपवान्, दुष्ट हो या सुशील, मूर्ख हो या बुद्धिमान— मनुष्य को उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। यदि वह उसके साथ संतुष्ट हो जाए तो वह मानसिक क्लेश से सदा के लिए मुक्त हो जाएगा। जिह्ना के स्वाद में पड़कर मनुष्य को अपने पास उपलब्ध भोजन का कभी निरादर नहीं करना चाहिए। रूखा-सूखा या छप्पन भोग, जो भी भोजन उसके पास हो, प्रसन्नतापूर्वक उसका सेवन करें। इसी प्रकार

पुरुषार्थ द्वारा अर्जित किए गए थोड़े से धन में भी परम संतोष का अनुभव करें। लेकिन इसके साथ ही चाणक्य ने मनुष्य को दान, पूजा-पाठ और अध्ययन में निरंतर आगे बढ़ने का परामर्श दिया है।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च॥

कहा जाता है कि वार्त्तालाप में मग्न दो व्यक्तियों के बीच में से कभी नहीं निकलना चाहिए। चाणक्य ने भी इस कथन को विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण कहा है। वे कहते हैं कि दो ब्राह्मणों, अग्नि एवं ब्राह्मण, दंपती, स्वामी एवं सेवक तथा बैल एवं हल के बीच में से होकर निकलने से किसी-न-किसी अनिष्ट का भय बना रहता है। इसलिए इनके बीच में से निकलने की अपेक्षा एक ओर का मार्ग चुनें।

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरु ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा॥

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कन्या, वृद्ध तथा बच्चा-चाणक्य ने इन्हें आदर और सम्मान का भागी कहा है। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि उपर्युक्त सभी प्राणी आदरणीय लोगों की श्रेणी में आते हैं। इसलिए मनुष्य को कभी भी इन्हें पैरों से स्पर्श नहीं करना चाहिए। ऐसा करनेवाला बुद्धिहीन मनुष्य अपार दुःख भोगता है।

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती शतहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनम्॥

दुष्ट व्यक्ति की निकटता अत्यंत हानिकारक और संकटदायक होती है। इसलिए उसकी संगति से मनुष्य को सदैव दूर रहना चाहिए। इस संदर्भ में चाणक्य अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि बैलगाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ तथा हाथी से सौ हाथ दूर रहना ही श्रेयस्कर है। लेकिन चाणक्य ने दुराचारी व्यक्ति को इनसे भी अधिक भयावह माना है। इसलिए उन्होंने सज्जन मनुष्यों को परामर्श दिया है कि ऐसे दुराचारियों से बचने के लिए देश का त्याग भी निस्संकोच कर देना चाहिए, अन्यथा मनुष्य का पतन होते देर नहीं लगेगी।

हस्ती अंकुशहस्तेन वाजी हस्तेन ताड्यते।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः॥

दुर्जन व्यक्ति की प्रवृत्ति और उसे वश में करने का उपाय बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार हाथी को अंकुश, घोड़े को चाबुक तथा सींगवाले पशुओं को डंडे से वश में किया जाता है, उसी प्रकार दुर्जन को वश में करने के लिए तलवार का सहारा लेना पड़ता है। इसे और विस्तृत रूप में समझाते हुए चाणक्य कहते हैं कि दुर्जन व्यक्ति अत्यंत नीच प्रवृत्ति का होता है। उसका मन-मस्तिष्क सदैव दूसरों का अहित करने के लिए उद्यत रहता है। ऐसे मनुष्यों को प्रेम, स्नेह अथवा ज्ञान द्वारा बदलना असंभव है। कई बार ऐसे अवसर भी सामने आ जाते हैं, जब दुष्ट मनुष्य अपनी सभी सीमाएँ लाँघ जाता है। ऐसी स्थिति में स्वयं की रक्षा हेतु सज्जन मनुष्य को तलवार का प्रयोग करना चाहिए।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते।
साधवः परसंपत्तौ खलः परविपत्तिषु।।

ब्राह्मण को भोजन से अत्यंत प्रेम होता है, इसलिए पर्याप्त स्वादिष्ट भोजन द्वारा उसे संतुष्टि मिलती है। मोर बादलों को देखकर प्रसन्न हो उठता है उनके गर्जन से उसके पैर थिरकने लगते हैं। इस नृत्य में ही उसकी संतुष्टि निहित होती है। इसी प्रकार दूसरों का वैभव, ऐश्वर्य, समृद्धि और सुखों को देखकर सज्जन मनुष्य कभी ईर्ष्या नहीं करते अपितु वे अपने थोड़े से साधनों से ही संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन इसके विपरीत, दुष्ट और दुर्जन व्यक्ति की संतुष्टि दूसरों के अहित में छिपी होती है। वे अन्य व्यक्तियों को संकट में देखकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम्।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा।।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य कूटनीति से युक्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण कथन को प्रकट करते हैं। इस कथन में मनुष्यों के लिए उनका गुप्त परामर्श भी छिपा हुआ है। वे कहते हैं कि बलवान् व्यक्ति को बल द्वारा जीतना अत्यंत कठिन है। इसलिए उसे उसके अनुकूल व्यवहार करके वश में कर लें। दुष्ट शत्रु को उसके प्रतिकूल व्यवहार से पराजित करें। इसके विपरीत जो शत्रु समान बल से युक्त हो, उसे विनय और बल के संयोग से जीता जा सकता है।

बाहुवीर्यं बलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद् बली।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमुत्तमम्।।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति कौन सी है? किस आंतरिक शक्ति द्वारा मनुष्य दूसरों को अपने समक्ष झुकने के लिए विवश कर सकता है? इस संदर्भ में चाणक्य ने बड़ी ही गूढ़ बात कही है। वे कहते हैं कि राजा की शक्ति उसका बाहुबल होता है, जिससे वह शत्रुओं का नाश करता है। ब्राह्मण की शक्ति उसके ब्रह्म-ज्ञान में निहित है। इसके द्वारा वे बड़े-से-बड़े ज्ञानी को पल भर में पराजित कर सकता है। स्त्रियों की शक्ति उनका रूप-सौंदर्य, यौवन और मृदु भाषा है। सुकोमल होते हुए भी इनके द्वारा वह किसी को भी अपने पैरों में झुकाने की शक्ति रखती है। इसलिए मनुष्य को अपनी शक्ति को भली-भाँति पहचान लेना चाहिए।

नाऽत्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः।।

वर्तमान समय सीधे एवं सरल लोगों के लिए अत्यंत दुःखदायक है। कोई भी चतुर व्यक्ति अपने स्वार्थ हेतु उन्हें सरलता से ठग लेता है। ऐसी स्थिति में चाणक्य का उपर्युक्त श्लोक अत्यंत सटीक है। इस श्लोक द्वारा उन्होंने सरल एवं सज्जन मनुष्यों को परामर्श देते हुए कहा है कि कभी-कभी मनुष्य के लिए उसकी अत्यधिक सरलता, सादगी और सीधा स्वभाव अभिशाप बन जाता है। उनकी सज्जनता का लाभ स्वार्थी और दुष्ट मनुष्य उठाते हैं। इसके लिए वे उनका अहित करने से भी नहीं चूकते। इसका उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि वन में टेढ़े-मेढ़े वृक्षों को कोई नहीं छूता। इसके विपरीत सीधे खड़े वृक्ष काट दिए जाते हैं। अतः मनुष्य को इतना सज्जन भी नहीं होना चाहिए कि कोई भी उसे ठग ले।

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसाः तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजन्ते पुनराश्रयन्ते॥

इस श्लोक द्वारा स्वार्थी मनुष्य की तुलना हंस से करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जलाशय में जल होने पर हंस वहाँ आकर विहार करते हैं, उसके किनारे अपना घोंसला बनाते हैं। लेकिन जब जलाशय सूख जाता है तो वे स्नेह के सभी बंधन तोड़कर वहाँ से उड़ जाते हैं। स्वार्थी मनुष्य भी इसी प्रकार का व्यवहार करता है। जब तक उसका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता तब तक वह आश्रयदाता के साथ जुड़ा रहता है, मीठे वचन बोल-बोलकर उससे स्नेह जताता है। लेकिन एक बार स्वार्थ पूरा हो जाने के बाद वह आश्रयदाता को त्याग देता है। इसलिए मनुष्य को हंस के समान स्वार्थप्रिय नहीं होना चाहिए। यदि सुख में वह किसी का साथ देता है तो दुःख आने पर भी उसे उसका साथ पूरी दृढ़ता के साथ निभाना चाहिए।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परिवाह इवाऽम्भसाम्॥

धन का अत्यधिक संग्रह मनुष्य के मन-मस्तिष्क को भ्रष्ट तो करता ही है, साथ ही उसे लोभी और स्वार्थी बना देता है। इस कथन को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार जलाशय में रुके हुए जल को समयानुसार न बदला जाए तो उसमें सड़ाँध उत्पन्न हो जाती है और वह किसी उपयोग का नहीं रहता—उसे उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक है कि उस जल को चलायमान रखा जाए, उसी प्रकार संचित धन को दान द्वारा रिक्त करते रहना चाहिए। इससे एक ओर मनुष्य जहाँ लोक में यश एवं मान-सम्मान प्राप्त करता है, वहीं दूसरी ओर परलोक में सुखों का मार्ग प्रशस्त कर लेता है।

यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्याऽर्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्याऽर्थाः स पुमाँल्लोके यस्याऽर्थाः स च जीवतिः॥

धन के महत्त्व, प्रभाव और उपयोगिता को सदियों से स्वीकारा जाता रहा है। स्वयं चाणक्य ने भी धन की महिमा को बुद्धिमत्ता और ज्ञान से ऊपर माना है। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि व्यक्ति के पास ज्ञान-विवेक का अभाव हो, लेकिन यदि उसके पास अतुल्य धन है तो समाज में उसे ही आदर-सम्मान के योग्य माना जाएगा। इसके विपरीत ज्ञान, विवेक एवं बुद्धि से युक्त किसी भी निर्धन व्यक्ति को तुच्छ और उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। धन की शक्ति इतनी अपार है कि उसके प्रभाव से पराए भी अपने हो जाते हैं, जबकि निर्धनता अपनों को भी पराए की श्रेणी में खड़ा कर देती है। धन का अभाव ही विपत्ति में मनुष्य को अकेला रहने के लिए विवश कर देता है। धन ही व्यक्ति को समाज में सर्वोच्च सम्मान प्रदान करता है।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी देवाऽर्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥

महापुरुषों की पहचान के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि दानशीलता, मृदु वाणी, ईश-पूजा और विद्वान् भक्ति जिस मनुष्य में इन चार गुणों का समावेश होता है, वस्तुतः उसी का मूल्यांकन महापुरुषों की श्रेणी में किया जाता है। ऐसा मनुष्य दानादि कर्म करने के लिए सदैव तत्पर रहता है उसकी भाषा मृदुता से परिपूर्ण होती है ईश्वर के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा का भाव होता है तथा ज्ञानवान् विद्वान् उससे सदैव मान-सम्मान पाते हैं।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीचप्रसङ्गः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम्॥

दुष्ट व्यक्ति की पहचान बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि जो मनुष्य अत्यंत क्रोध करता है, जिसके मुख से सदा विष भरी बातों का प्रसार होता है, जो अपने बंधु-बांधवों का अहित करने के लिए सदैव तत्पर रहता है, जो दुष्ट व्यक्तियों की संगति करता है तथा जो नीच व्यक्ति की चाकरी करता है, वह व्यक्ति दुर्जन कहलाता है। ऐसा मनुष्य पृथ्वी पर ही नरक की घोर यातनाएँ भोगता है। दरिद्रता एवं चरित्रहीनता उनके अन्य अवगुण होते हैं।

गम्यते यदि मृगेन्द्र-मन्दिरं लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम्।
जम्बुकाऽऽलयगते च प्राप्यते स वत्स-पुच्छ-खर चर्म-खण्डनम्॥

महापुरुषों की संगति के प्रभाव का उल्लेख करते हुए चाणक्य कहते हैं कि शेर की गुफा में भी हाथी के मस्तक पर सुशोभित होनेवाली गजमुक्ता मणि मिल सकती है, लेकिन गीदड़ के आवास में केवल हड्डी या मांस के अतिरिक्त कुछ नहीं मिल सकता। इसी प्रकार सज्जन पुरुषों की संगति से बहुत कुछ अच्छा सीखने को मिल जाता है। इसके विपरीत दुष्ट व्यक्तियों की संगति केवल अवगुण और दुराचार ही प्रदान करती है।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे॥

चाणक्य ने शिक्षा के महत्त्व पर अत्यधिक जोर दिया है। शिक्षा से रहित मनुष्य की तुलना उन्होंने कुत्ते की दुम से की है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार कुत्ता अपनी दुम से न तो अपने गुप्तांग छिपा सकता है और न ही उससे मक्खी-मच्छर उड़ा सकता है, उसी प्रकार मूर्ख और अज्ञानी व्यक्ति न तो परिवार का उचित पालन-पोषण करने में समर्थ होता है और न ही उनकी रक्षा कर सकता है। इसलिए मनुष्य को भोजन एवं धन की लालसा में डूबे रहने की अपेक्षा ज्ञान अर्जित करना चाहिए।

वाचः शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूते दया शौचं एतच्छौचं पराऽर्थिनाम्॥

केवल परोपकार और परहित की भावना ही मनुष्य को पवित्र करती है। इसके अभाव में मन, वाणी और इंद्रियों की पवित्रता कोई महत्त्व नहीं रखती। इसे और अधिक विस्तृत रूप में स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि दूसरों के कल्याण को महत्त्व देनेवाला मनुष्य ही सच्चे अर्थों में पवित्र होता है। बुरी संगति में रहकर भी ऐसे मनुष्य की आत्मा कलंकित नहीं होती।

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्याऽऽत्मानं विवेकतः॥

यद्यपि पुष्प में गंध, तिलों में तेल, लकड़ी में अग्नि, दुग्ध में घृत तथा ईख में मिठास विद्यमान होती है, तथापि वह दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार चाणक्य ने मनुष्य के संबंध में आत्मा का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य-शरीर में आत्मा का वास होता है। उसे देखा नहीं जा सकता, लेकिन विवेक द्वारा उसे अनुभव अवश्य किया जा

सकता है। इसलिए मनुष्य को विवेक द्वारा आत्मा को जाग्रत् करना चाहिए।

आठवाँ अध्याय

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

चाणक्य के मतानुसार, दुष्ट और दुर्जन व्यक्तियों को धन की महत्त्वाकांक्षा होती है। उसे प्राप्त करने के लिए वे नीच कार्य करने से भी पीछे नहीं हटते। धन-प्राप्ति ही उनका एकमात्र ध्येय होता है। यद्यपि मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी धन को महत्त्व देते हैं, तथापि उनके लिए मान-सम्मान भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। इसी कारण धन की लालसा होते हुए भी वे नीच कार्य करने से डरते हैं। इसके विपरीत, सज्जन व्यक्तियों के लिए मान-सम्मान सबसे बढ़कर होता है। इसके लिए वे बड़ी-से-बड़ी बहुमूल्य वस्तु भी अस्वीकार कर देते हैं।

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम्।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानाऽऽदिकाः क्रियाः॥

रुग्ण और क्षुधा-पीड़ितों के लिए इस श्लोक में चाणक्य ने शास्त्र-सम्मत कथन का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि शास्त्रें में जल, गन्ना, दुग्ध, कंद, पान, फल और औषधि अत्यंत पवित्र कहे गए हैं। इसलिए इनका सेवन करने के बाद भी व्यक्ति धार्मिक कार्य संपन्न कर सकते हैं। इनसे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती।

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा॥

चाणक्य ने पूरी दृढ़ता से इस बात को स्वीकार किया है कि माता-पिता के गुण-अवगुण एवं आचरण का प्रभाव उनकी संतान पर अवश्य पड़ता है। वे कहते हैं कि यद्यपि दीपक अँधेरे का नाश कर देता है, तथापि उसके काजल से कालिमा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार मनुष्य जिस प्रकार के अन्न का भक्षण करता है, उसकी संतान वैसी ही होती है। इसे और स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि यदि मनुष्य बेईमान, चरित्रहीन और दुष्ट प्रवृत्ति का है तो उसकी संतान भी उसके अवगुणों से युक्त होगी। इसके विपरीत सज्जन मनुष्य की संतान उसी के समान बुद्धिमान, सरल, ईमानदार और सहनशील होगी। इसलिए मनुष्य को सदैव सद्गुणों को ही ग्रहण करना चाहिए।

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा।
जीवान् स्थावरजङ्गमांश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलम्
भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छन्तमम्भोनिधिम्॥

यद्यपि चाणक्य ने दान करने पर विशेष जोर दिया है, तथापि उनके मतानुसार दान हर किसी को नहीं देना चाहिए। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि जिस प्रकार समुद्र का जल ग्रहण कर मेघ उसे समृद्धिदायक वर्षा के रूप में

खेतों पर बरसाते हैं तथा वही जल कई गुना होकर पुनः समुद्र में जा मिलता है, उसी प्रकार दान का वास्तविक अधिकारी वही व्यक्ति है जो सहनशीलता, विद्वत्ता, ईमानदारी, सज्जनता आदि गुणों से संपन्न हो। ऐसे योग्य व्यक्ति को दिया गया दान सहस्र गुना होकर वापस मिलता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति आलस्य से परिपूर्ण, दुष्ट, दूसरों से ईर्ष्या करनेवाला, व्यभिचारी तथा पाप-कर्मों में लिप्त हो, उसे कभी दान न दें, अन्यथा ऐसे कुपात्र को दिया गया दान महत्त्वहीन हो जाएगा।

चाण्डालानां सहस्रे च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः॥

चाणक्य सावधान करते हुए कहते हैं कि मनुष्य के लिए नीच या दुर्जन व्यक्ति की संगति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। यदि संभव हो तो उसे देखने से भी बचना चाहिए। इसी में उसका हित निहित है। शास्त्रें में ऋषि-मुनियों ने भी ऐसे व्यक्तियों को सहस्र चांडालों के समान कहा है। उनकी दृष्टि में दुर्जन व्यक्ति अत्यंत घातक, नीच और विश्वासघाती होता है। उसकी संगति मात्र से अनेक संकट एवं दुःख उत्पन्न हो जाते हैं।

तैलाऽभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चाण्डालो यावत् स्नानं न चाऽऽचरेत्॥

हिंदू शास्त्रें में स्नान को अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा पवित्र कर्म कहा गया है। इसी संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि शरीर पर तेल की मालिश करवाने, श्मशान में जाने, संभोग तथा हजामत के बाद मनुष्य का शरीर अपवित्र हो जाता है। ऐसी स्थिति में स्नान ही ऐसी क्रिया है, जिससे मनुष्य पुनः पवित्र होता है। इसलिए उपर्युक्त कर्मों के पश्चात् मनुष्य को स्नान अवश्य करना चाहिए। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यंत श्रेष्ठ है। किंतु साथ ही उन्होंने कहा है कि संभोग के एकदम बाद स्नान नहीं करना चाहिए। इससे शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥

जल ग्रहण करने के विषय में चाणक्य कहते हैं कि शरीर का महत्त्वपूर्ण भाग पेट है। इसी स्थान से स्वास्थ्य या अस्वस्थता का उदय होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपनी पाचन-प्रणाली को पूरी तरह से ठीक रखे। यदि अपच की शिकायत हो जाए तो ऐसी स्थिति में जल औषधि का कार्य करता है। अतः भरपूर जल का सेवन करें। परंतु ध्यान रहे, जल का सेवन भोजन से पूर्व करें अथवा अन्न पच जाने के बाद। यदि भोजन के एकदम बाद जल का सेवन किया जाए तो वह विष के समान प्रभावशाली होकर शरीर को शनैः-शनैः नष्ट कर देता है।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाऽज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः॥

अगर ज्ञान को उपयोग में न लाया जाए तो वह विस्मृत हो जाता है; किसी व्यक्ति की उपेक्षा से वह निष्क्रिय हो जाता है सेनानायक के अभाव में सेना नष्ट हो जाती है और पति के अभाव में पत्नी नष्ट हो जाती है।

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्ते गतं धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः।।

वृद्धावस्था मानव-जीवन की सबसे दयनीय और कष्टकारी अवस्था कही गई है। इस अवस्था में चाणक्य ने पत्नी की मृत्यु, सगे-संबंधियों द्वारा धन को हड़पना तथा भोजन हेतु दूसरों का मुँह देखना-इन तीन बातों को अत्यंत कष्टकारी कहा है। इनके विषय में वे कहते हैं कि पत्नी वृद्धावस्था में सच्ची साथी होती है। उसके अभाव में व्यक्ति पूरी तरह से असहाय हो जाता है। यदि वृद्धावस्था में मनुष्य के पास धन हो तो उसे भोजन के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं होना पड़ता। इसलिए मनुष्य को दयनीय दशा से बचने के लिए धन का संचय अवश्य करना चाहिए।

नाग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम्।।

चाणक्य के अनुसार, यज्ञ-हवन आदि के अभाव में वेदों द्वारा अर्जित ज्ञान व्यर्थ होता है। इसलिए यदि यज्ञ के उपरांत दान-दक्षिणा नहीं दी गई तो यज्ञ का समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है। इस कथन द्वारा चाणक्य स्पष्ट कहना चाहते हैं कि मनुष्य को किसी भी कार्य में तब तक सफलता नहीं मिल सकती, जब तक उसमें उसकी पूरी श्रद्धा न हो। अर्थात् कार्य वही सफल होता है, जिसमें मन की शुद्धता और समर्पण की भावना निहित हो। इसलिए मनुष्य द्वारा किए जानेवाले सभी शुभ एवं पुण्यमय कर्म श्रद्धा और समर्पण से परिपूर्ण होने चाहिए।

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तया सिद्धस्तस्य विष्णुः प्रसीदति।।

हिंदू धर्म में लकड़ी, पत्थर या धातु की प्रतिमा को ईश्वर मानकर उनकी पूजा करने का प्रचलन है। इस संदर्भ में चाणक्य अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मनुष्य किसी भी वस्तु को ईश्वर मानकर उसकी पूजा कर सकता है। लेकिन इसके लिए सच्ची श्रद्धा और भक्ति का होना आवश्यक है। वस्तुतः इन्हीं के प्रभाव के कारण ईश्वर मनुष्य के हृदय में वास करता है और मनुष्य इन्हीं भावों द्वारा निर्जीव वस्तुओं में ईश्वर की कल्पना कर सिद्धियाँ प्राप्त करता है।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्।।

लकड़ी, पत्थर, धातु आदि से निर्मित देव-प्रतिमाओं को साक्षात् देव मानकर पूजने पर ही ईश-कृपा प्राप्त होती है। अर्थात् ईश्वर इन बेजान वस्तुओं में नहीं, भावना में वास करते हैं। तभी तो कहा गया है कि बिना श्रद्धा-भावना के सिद्धि नहीं मिलती।

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णाया: परो व्याधिर्न च धर्मो दयापर:।।

अपने संपूर्ण जीवन का अनुभव प्रस्तुत करते हुए चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक की रचना की। वे कहते हैं कि संसार में शांति से बढ़कर कोई तप नहीं है, संतोष के समान परम सुख और तृष्णा से बढ़कर कोई रोग नहीं है। इसी प्रकार दूसरों के दुःखों से दुःखी होना और उनकी सहायता के लिए तत्पर रहना ही मनुष्य का वास्तविक धर्म है। अर्थात् मनुष्य को क्रोध से बचते हुए शांतिपूर्वक समस्त कष्टों को सहना चाहिए। उसका यह कार्य तपस्वियों द्वारा किए जानेवाले कठोर तप के समान है। मनुष्य के पास जितने भी साधन उपलब्ध हों, उसे उसी में संतोष करना चाहिए। संतुष्टि ही उसे परम सुख प्रदान करेगी। जबकि तृष्णा रूपी रोग लगाकर वह वास्तविक सुखों को भी गँवा देगा। ईश्वर की पूजा करना अथवा धार्मिक स्थलों की यात्र करना ही मनुष्य का धर्म नहीं है, परोपकार और मानवता ही सच्चा मानव-धर्म है। इसलिए मनुष्य को इस धर्म का पालन करना चाहिए।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम्।।

क्रोध व्यक्ति का पूर्णतः सर्वनाश कर डालता है। क्रोध साक्षात् यम का स्वरूप है, जो अपने विकराल मुख से व्यक्ति को ग्रसने के लिए सदा तत्पर रहता है। इसके अधीन होकर व्यक्ति बुद्धि-विवेक खो बैठता है और नीच कर्म कर डालता है। कहा जाता है कि यमलोक जाते समय मार्ग में वैतरणी नामक नदी आती है, जिसे पार करना जीवात्मा के लिए अत्यंत कष्टप्रदायक होता है। चाणक्य ने तृष्णा की तुलना वैतरणी नदी से की है। वे कहते हैं कि मनुष्य को यथासंभव तृष्णा से स्वयं को बचाना चाहिए। विद्या की तुलना उन्होंने सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली कामधेनु गाय से की है। उनके अनुसार, विद्यार्जन करनेवाले मनुष्य की समस्त मनोकामनाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं। इसी प्रकार चाणक्य ने संतोष को इंद्र के विहार-स्थल नंदन वन के समान सुखदायक और मनमोहक कहा है। इसलिए उन्होंने संतोष का आश्रय लेने पर बल दिया है।

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम्।।

चाणक्य की दृष्टि में रूप का महत्त्व गुणों से बढ़ता है, जबकि कुल की शोभा सदाचार में निहित होती है। इसी प्रकार धनार्जन द्वारा ही विद्या की परख होती है तथा धन के उपयोग से धन की महत्ता बढ़ती है। इसे स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि रूप-सौंदर्य एवं यौवन से परिपूर्ण होने पर भी यदि मनुष्य गुणों से रहित है तो उसे तिरस्कार और उपेक्षा सहनी पड़ेगी। व्यक्ति के आचरण पर ही कुल की श्रेष्ठता निर्भर करती है। यदि मनुष्य सदाचार का पालन करता है तो उसका कुल समाज में यथोचित आदर-सम्मान का भागी बनता है। जिस विद्या द्वारा धन अर्जित न किया जा सके, वह निरर्थक है। यदि धन का उपयोग न करके उसका सदैव संचय ही किया जाए तो वह संचित धन महत्त्वहीन हो जाता है।

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम्।।

गलत आचरण से सौंदर्य नष्ट हो जाता है पथभ्रष्ट होने से कुल कलंकित हो जाता है इसी प्रकार पूर्णता प्राप्त किए बिना किसी काम में सफलता नहीं मिलती है और धन का अनुचित व्यय करने से वह नष्ट हो जाता है।

शुचिर्भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता।
शुचि: क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मण: शुचि:।।

पृथ्वी के गर्भ में संचित जल, पतिव्रता नारी, कल्याणकारी राजा तथा संतोषी ब्राह्मण—इन चारों को चाणक्य ने परम पवित्र कहा है। उनके अनुसार, पृथ्वी में संचित जल खनिजों से युक्त होने के कारण स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। पतिव्रता नारी के समान तेजस्वी कोई अन्य नहीं होता। उसके समक्ष देवता भी नतमस्तक होते हैं। कल्याणकारी राजा सदैव प्रजा के कल्याण और परोपकार में लीन रहता है। उसकी गिनती महापुरुषों में की जाती है। संतोषी ब्राह्मण को दिया गया दान पुण्य रूप में कई गुना बढ़कर वापस मिलता है। इसलिए मनुष्य को इन सभी का सम्मान करना चाहिए।

असन्तुष्टा द्विजा नष्टा: सन्तुष्टाश्च महीभृत:।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलाङ्गना:।।

असंतुष्ट ब्राह्मण, महत्त्वाकांक्षारहित संतोषी राजा, लज्जा करनेवाली वेश्या तथा निर्लज्ज कुलीन नारी—चाणक्य ने इन चारों को मनुष्य के लिए अत्यंत हानिकारक कहा है। वे कहते हैं कि असंतुष्ट ब्राह्मण समाज में कभी भी सम्मान का अधिकारी नहीं बन पाता। ऐसी स्थिति में उसकी विद्वत्ता और बुद्धि नष्ट हो जाती है। महत्त्वाकांक्षा से रहित राजा प्रजा के कल्याण और उनकी उन्नति के लिए कभी सजग नहीं होता। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही शत्रु उसके राज्य का विनाश कर देते हैं। जो वेश्या लज्जा से युक्त हो, वह अपने ग्राहकों को कभी संतुष्ट नहीं कर सकती। इससे उसके ग्राहक विमुख हो जाते हैं और अंत में वह अन्न के लिए तरसते हुए मर जाती है। इसके विपरीत जो कुलीन नारी अत्यंत निर्लज्ज होती है, वह बुरी संगति में पड़कर अपना और अपने कुल का नाश कर डालती है।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम्।
दुष्कुलीनोऽपि विद्वांश्च देवैरपि सुपूज्यते।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने विद्वत्ता के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। वे सटीक शब्दों में कहते हैं कि विद्वत्ता एवं गुणों के अभाव में उच्च कुल में जनमा व्यक्ति भी तिरस्कार का भागी बन जाता है। इसके विपरीत नीच कुल में जनमा विद्वान् एवं गुणों से युक्त व्यक्ति भी समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त करता है। अर्थात् महान् बनने के लिए मनुष्य का उच्च कुल में जन्म लेना ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिए उसका सहनशील, संतोषी, विद्वान् एवं परोपकारी होना भी आवश्यक है।

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्।
विद्यया लभ्यते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते।।

विद्या की महत्ता को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि संसार में केवल विद्वानों की सर्वत्र प्रशंसा होती है सभी स्थानों पर उन्हें मान-सम्मान मिलता है। ये सभी सुख उन्हें विद्या द्वारा प्राप्त होते हैं। वस्तुतः संसार में विद्या की ही पूजा की जाती है उसके समान बहुमूल्य कुछ और नहीं है। इसलिए उसका आश्रय लेनेवाला व्यक्ति भी समाज में सम्मान का अधिकारी बन जाता है। अतः मनुष्य को विद्यार्जन अवश्य करना चाहिए। इससे उसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा।

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराऽऽक्रान्ता च मेदिनी॥

चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों को पशु-तुल्य कहा है, जो मांस का भक्षण करते हों, मदिरापान करते हों, मूर्ख या अनपढ़ हों। वे कहते हैं कि ऐसे मनुष्य पशुओं के समान आचरण करते हैं। समाज और राज्य को केवल अवगुणों के अतिरिक्त ये कुछ प्रदान नहीं करते। इनसे न तो परोपकार की उम्मीद की जा सकती है और न ही सज्जनता की। इसलिए ये पृथ्वी पर बोझ के समान हैं। ऐसे पशु-तुल्य मनुष्यों का जीवन व्यर्थ है।

अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥

हिंदू शास्त्रें में शुभ मांगलिक कार्यों के अवसर पर यज्ञ-हवन को अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहा गया है। स्वयं ब्रह्माजी ने इसकी तुलना कल्पवृक्ष से की है, जिससे मनुष्य की समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस कथन को चाणक्य ने भी स्वीकार किया है। लेकिन साथ ही इस विषय पर वे अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यज्ञ करते समय यदि उसके विधि-विधान में किसी प्रकार की कमी रह जाए तो यज्ञ फलप्रदायक की अपेक्षा कष्टप्रदायक बन जाता है। इसलिए यज्ञ करते समय अन्न का दान अवश्य करना चाहिए, यथाविधि मंत्रेच्चारण होना चाहिए तथा पुरोहितों को उचित दान-दक्षिणा दी जानी चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में यज्ञ विनाशकारी हो जाता है। इसलिए यज्ञ तभी करें, जब उसे यथाविधि करने का सामर्थ्य हो।

नौवाँ अध्याय

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत् त्यज।
क्षमाऽऽर्जवं दया शौचं सत्यं पीयूषवद् भज॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को मुक्ति-मार्ग का उपदेश दिया है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष पाना चाहता है तो उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि विकारों को पूरी तरह से त्याग देना चाहिए। ये विकार मनुष्य के लिए विष-तुल्य हैं। इनके प्रभाव से मनुष्य जीवनपर्यंत मोह-माया में जकड़ा रहता है। इन विकारों की अपेक्षा मनुष्य को क्षमा, सरलता, धैर्य, विनम्रता, ईमानदारी, उदारता, परोपकार, दया, सत्यता, प्रेम और पवित्रता जैसे गुणों को ग्रहण करना चाहिए। इससे मनुष्य समस्त पाप-कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत्॥

जो एक-दूसरे के गुप्त रहस्यों को उजागर कर देते हैं, ऐसे व्यक्तियों को चाणक्य ने पतित, अधम और दुष्ट कहा है। वे कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति पहले तो एक-दूसरे को अपमानित कर आनंद का अनुभव करते हैं, लेकिन बाद में बाँबी में फँसे सर्प की भाँति उनका नाश हो जाता है। मनुष्य को ऐसे व्यक्तियों से बचकर रहना चाहिए।

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाऽकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनाढ्यश्च नृपश्चिरायुः धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत्॥

जिस प्रकार स्वर्ण में सुगंध, गन्ने में फल तथा चंदन में पुष्प नहीं होते, उसी प्रकार न तो विद्वान् धनी होते हैं और न ही राजा दीर्घायु। सृष्टि के रचयिता को इस विषय में जो उचित लगा, उन्होंने किया। यदि वे उपर्युक्त कार्य भी संपन्न कर देते तो संसार के लिए अति उत्तम होता। परंतु सृष्टि के इस नियम में किसी प्रकार भी परिवर्तन संभव नहीं है।

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम्।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य स्पष्ट करते हैं कि अमृत के समान पवित्र और जीवन-प्रदायक औषधि कोई दूसरी नहीं है। यह सभी रोगों का नाश करनेवाला होता है। इसलिए औषधियों में अमृत सबसे श्रेष्ठ है। आँखें मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण इंद्रियाँ हैं। इनके माध्यम से ही मनुष्य ईश्वर की इस सुंदर रचना को देखने योग्य बनता है। इनके अभाव में जीवन पूर्णतया अंधकारमय हो जाता है। अतः चाणक्य ने आँखों को सभी इंद्रियों में उत्तम कहा है। इसी प्रकार मस्तिष्क मानव-शरीर को नियंत्रित करता है। उसके बिना शरीर व्यर्थ होता है।

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्ता
पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान्॥

चाणक्य की दृष्टि में सूर्य एवं चंद्रग्रहण के विषय में पता लगाने वाले भी विद्वान् कहलाते हैं। इसके लिए न तो उन्होंने किसी दूत को आसमान में भेजा और न ही इस संदर्भ में किसी के साथ वार्त्तालाप किया। उन्होंने पृथ्वी पर रहते हुए ही अंतरिक्ष के इन तथ्यों का अध्ययन कर उनका विश्लेषण किया और समस्त जानकारी प्राप्त की। इससे यही स्पष्ट होता है कि विद्वान् व्यक्ति बिना कुछ कहे ही सामनेवाले के अंतर्भावों को भलीभाँति जान-समझ लेते हैं। उनकी बौद्धिकता और विद्वत्ता के समक्ष कुछ भी रहस्यमय नहीं रहता।

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधाऽऽर्तो भयकातरः।
भाण्डारी प्रतीहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत्॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूख से पीड़ित, भयग्रस्त, भांडारी और द्वारपाल—इन सातों का कार्य जागने से ही संपन्न होता है। इसलिए चाणक्य कहते हैं कि यदि ये सोते हुए मिलें तो इन्हें जगा देना चाहिए। जगाने पर विद्यार्थी अपना अध्ययन पूर्ण कर सकते हैं तथा सेवक अपने कार्यों को समयानुसार संपन्न करेगा। इसी प्रकार जगाने पर जहाँ पथिक के धन की रक्षा होगी, वहीं वह शीघ्र अपनी मंजिल तक पहुँच जाएगा। भूख से पीड़ित को जगाकर भोजन करवा दें तथा भयग्रस्त को आश्वस्त करें। भांडारी का कर्तव्य भंडार-घर की रक्षा करना तथा द्वारपाल का कार्य जागकर घर की पहरेदारी करना है। इनके सो जाने पर चोर-डाकुओं का बोलबाला हो जाएगा। इसलिए इन्हें भी जगा देना चाहिए।

अहिं नृपं च शार्दूलं किटिं च बालकं तथा।
परश्वानं च मूर्खं च सुप्त सुप्तान् न बोधयेत्॥

पूर्व श्लोक में चाणक्य ने कुछ लोगों की बात कही है। लेकिन इस श्लोक द्वारा वे कुछ प्राणियों को जगाने से मना करते हैं। वे कहते हैं कि सर्प, राजा, सिंह, शूकर, बालक, मूर्ख, मधुमक्खी तथा दूसरे के कुत्ते को कभी नहीं जगाना चाहिए, अन्यथा व्यक्ति को भयंकर कष्ट उठाना पड़ सकता है। इन प्राणियों का सोए रहना ही उत्तम है।

अर्थाऽधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनाः।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः॥

चाणक्य ने विद्या द्वारा धन अर्जित करनेवाले ब्राह्मण को समाज के लिए व्यर्थ बताया है। वे कहते हैं कि जो ब्राह्मण अपनी विद्या का प्रयोग केवल धन-प्राप्ति के लिए करता है, समाज में उसका होना या न होना एक बराबर होता है। संसार में उसकी विद्वत्ता एवं ज्ञान का प्रसार कभी नहीं होता। ऐसे ब्राह्मण का एकमात्र उद्देश्य धनार्जन ही होता है।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनाऽऽगमः।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति।।

जिसके क्रोध से कोई भयभीत न हो तथा जिसके प्रसन्न होने से भी किसी को कोई लाभ नहीं होता, ऐसे मनुष्य का आचरण किसी को प्रभावित नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्य से न तो दया की आशा करनी चाहिए और न ही किसी प्रकार की कृपा की। यह मनुष्य केवल अपने लिए ही जीता है, दूसरों से इसे कोई मतलब नहीं होता।

निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्तव्या महती फणा।
विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयङ्करः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने अपनी कूटनीतिज्ञता का प्रभाव छोड़ा है। वे बल एवं प्रभाव के आडंबर को उचित मानते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार विषैला न होने पर भी सर्प के उठे हुए फन को देखकर लोग भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रभावहीन व्यक्ति को भी आडंबर द्वारा समाज में अपना प्रभाव बनाकर रखना चाहिए। जैसे विषहीन सर्प की वास्तविकता लोग नहीं जानते, वैसे ही आडंबरयुक्त प्रभाव से लोग भयभीत रहते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कभी लोगों की उपेक्षा का पात्र नहीं बनता।

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः।
रात्रौ चौर्यप्रसंगेन कालो गच्छत्यधीमताम्।।

मूर्ख और बुद्धिमान व्यक्ति की दिनचर्या का उल्लेख करते हुए चाणक्य कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति की दिनचर्या जुए से आरंभ होती है। वे प्रातःकाल उठते ही जुए में डूब जाते हैं। दोपहर को वे नारी के साथ संभोग करते हैं तथा उनका रात्रि का समय चोरी या अन्य पाप-कर्मों में व्यतीत होता है। लेकिन इसके विपरीत सज्जन एवं बुद्धिमान मनुष्य की दिनचर्या सत्कर्मों द्वारा आरंभ होती है तथा उनका संपूर्ण दिन अन्य व्यक्तियों की भलाई और परोपकार में व्यतीत हो जाता है। इसलिए मनुष्य को सज्जन मनुष्य की भाँति समय का सदुपयोग करना चाहिए।

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम्।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत्।।

धार्मिक कार्यों के संदर्भ में चाणक्य का कथन है कि मनुष्य ईश्वर को प्रसन्न करके तभी उनसे वरदान प्राप्त कर सकता है, जब वह स्वयं अपने हाथों से उनकी सेवा करे। स्वयं माला गूँथकर भगवान् की प्रतिमा पर चढ़ाना, स्वयं चंदन घिसकर लगाना तथा अपने हाथों से लिखे गए स्तोत्र द्वारा उनका स्तुति-गान आदि स्वकर्मों द्वारा मनुष्य ईश्वर-कृपा का भागी बन जाता है। इसके विपरीत यही कार्य यदि वह अपने सेवक से करवाए तो इसका शुभाशुभ फल उसके स्थान पर सेवक को ही प्राप्त होगा। इसलिए मनुष्य को सभी धार्मिक कर्म स्वयं करने चाहिए।

इक्षुदण्डास्तिलाः क्षुद्राः कान्ता हेम च मेदिनी।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम्।।

ईख, तिल, क्षुद्र, स्त्री, स्वर्ण, धरती, चंदन, दही और पान का जितना भी मर्दन किया जाए, उतनी ही उनके गुणों में वृद्धि होती है। अर्थात् ईख (गन्ने) एवं तिल को जितना पेरा जाएगा, उसमें उतनी ही अधिक मात्र में रस और तेल निकलेगा। क्षुद्र एवं स्त्री को शिक्षित करने के लिए जितनी कठोरता की जाए, उतनी ही तेजी से वे इस ओर अग्रसर

होते हैं। स्वर्ण को अत्यधिक तपाने से उसकी चमक और शुद्धता में बढ़ोतरी होती है। धरती को अच्छी तरह जोतने से भरपूर फसल होती है। इसी प्रकार चंदन, दही और पान को भली-भाँति रगड़ने से उनके गुण बढ़ते जाते हैं।

दरिद्रता धीरतया विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते कुरूपता शीलतया विराजते॥

उपलब्ध वस्तुओं में संतोष का भाव प्रस्तुत करते हुए चाणक्य कहते हैं कि यदि व्यक्ति निर्धन है तो उसे धैर्यवान् होना चाहिए। इससे वह थोड़े साधनों द्वारा भी निर्धनता के कष्टमय जीवन पर विजय प्राप्त कर लेगा। यदि वह सस्ते वस्त्र को भी साफ-सुथरा रखेगा तो वह भी उत्तम लगेगा। निम्न कोटि के अन्न का गरमागरम सेवन करने पर वह भी उसे स्वादिष्ट लगेगा। इसी प्रकार बुद्धि-विवेक और गुणों से युक्त व्यक्ति कुरूप हो तो भी उसके मार्ग में बाधा नहीं आती। इसलिए मनुष्य को उपर्युक्त स्थितियों में भी सुख एवं संतोष का मार्ग ढूँढना चाहिए।

दसवाँ अध्याय

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन यो हीनः स हीनः सर्ववस्तुषु॥

चाणक्य की दृष्टि में विद्या से बढ़कर संसार में कोई दूसरा धन नहीं है। वे इसके महत्त्व को स्वीकारते हुए कहते हैं कि धन-वैभव से रहित व्यक्ति निर्धन नहीं होता; अपितु जो मनुष्य बुद्धि एवं विद्या से रहित होता है, वही वास्तविक निर्धन है। धन कमाने का कार्य एक मूर्ख व्यक्ति भी कर सकता है, लेकिन विद्यार्जन का सौभाग्य विरले को ही प्राप्त होता है। धन से परिपूर्ण होने पर भी मूर्ख अपने लिए मान-सम्मान अर्जित नहीं कर सकता। परंतु एक विद्वान् निर्धन होने पर भी समाज में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। इसलिए धनार्जन की अपेक्षा ज्ञानार्जन का अधिक महत्त्व है और मनुष्य को इसके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
शास्त्रपूतं वदेद् वाक्य मनः पूतं समाचरेत्॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य सावधान करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को अपना प्रत्येक कदम भलीभाँति सोच-विचारकर उठाना चाहिए; जल को वस्त्र द्वारा छानकर पीना चाहिए। अर्थात् उसे चाहिए कि वह सभी के साथ मृदु वाणी का प्रयोग कर सदाचार से युक्त व्यवहार करे। इससे न तो कभी वह ठोकर खाएगा और न ही जीवन में कभी पराजय का सामना करना पड़ेगा। चाणक्य इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य का आचरण ही लोगों को अपने समक्ष नतमस्तक करने के लिए पर्याप्त है। इससे शत्रुओं पर भी विजय पाई जा सकती है।

सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

चाणक्य के अनुसार, विद्या-प्राप्ति के मार्ग में अनेक कठिनाइयों एवं दुःखों का सामना करना पड़ता है। इसलिए सुखों की आशा करनेवाले विद्यार्थियों को विद्या-प्राप्ति का विचार त्याग देना चाहिए। भौतिक सुख और विद्या-प्राप्ति दो अलग-अलग मार्ग हैं। इन्हें एक साथ ग्रहण करना असंभव है। जहाँ एक ओर भौतिक सुख मनोहर और सुखदायक हैं, वहीं दूसरी ओर विद्यार्जन कठोर तप के समान है। इसे प्राप्त करने के लिए स्वयं को स्वर्ण की भाँति तपाना होगा। इसलिए मनुष्य को सोच-विचारकर इनमें से किसी एक का चयन करना चाहिए।

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न भक्षन्ति वायसाः॥

चाणक्य कहते हैं कि कवि की कल्पना इतनी ऊँची होती है कि साधारण मनुष्य का उस तक पहुँच पाना असंभव होता है। उसके कल्पना के महल को भेदना किसी के वश में नहीं है। इसी तरह स्त्री की शक्ति के विषय में मनुष्य अनभिज्ञ होते हैं। स्त्री यदि हठ पर आ जाए तो वह क्या कर सकती है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। नशे में चूर व्यक्ति की वाणी संयमहीन होकर अनियंत्रित हो जाती है। इसलिए वह कैसा व्यवहार करेगा, यह जानना संभव नहीं होता। कौआ भी यह नहीं जानता कि उसे क्या खाना चाहिए और क्या नहीं। अर्थात् किसी भी प्राणी की सीमा को जानना असंभव है। संकट आने पर मनुष्य किसी भी सीमा को लाँघ सकता है।

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः।।

भाग्य की महिमा गाते हुए चाणक्य कहते हैं कि भाग्य से पार पाना किसी के वश में नहीं है। यह भाग्य का ही खेल है कि एक राजा पल भर में रंक और एक रंक पल भर में राजा बन सकता है। ईश्वर ने मनुष्य का जैसा भाग्य लिख दिया, उसे उसी के अनुसार फल भोगना है। भाग्य को किसी भी तरह से बदला नहीं जा सकता। इसी के फलस्वरूप मनुष्य-जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती हैं, जिनके बारे में कोई कुछ नहीं जानता। इसलिए जहाँ तक हो सके, मनुष्य को सत्कर्म करने चाहिए। इससे उसका अनिष्ट टल नहीं सकता, लेकिन उसके प्रभाव को कम अवश्य किया जा सकता है।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधकः रिपुः।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चोराणां चन्द्रमा रिपुः।।

याचक को धन देते समय लोभी को अत्यंत कष्ट होता है, इसलिए उसकी दृष्टि में दान, भिक्षा या चंदा माँगनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उसका शत्रु है। इसी प्रकार ज्ञानयुक्त उपदेश देनेवाले मूर्खों की बात को काटकर उन्हें ज्ञानवान् बनाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। इसलिए मूर्ख उन्हें अपना शत्रु मानते हैं। व्यभिचारिणी पत्नी के लिए उसका पति शत्रु के समान होता है, क्योंकि वह उसकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने का प्रयास करता है। चाँद के प्रकाश में चोर चोरी करने में असमर्थ हो जाते हैं, इसलिए वे उसे अपना शत्रु मानते हैं। अर्थात् इस श्लोक द्वारा चाणक्य स्पष्ट करना चाहते हैं कि सन्मार्ग की ओर अग्रसर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को दुर्जन अपना शत्रु मानते हैं लेकिन फिर भी सज्जन व्यक्ति सन्मार्ग को छोड़ते नहीं हैं।

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाऽचलसंसर्गात् न वेणुश्चन्दनायते।।

जिस प्रकार मलयाचल पर्वत पर उगनेवाले बाँस चंदन वृक्षों से घिरे होने के बाद भी उनके समान सुगंधित नहीं होते, उनमें चंदन-वृक्ष के गुण उत्पन्न नहीं होते, उसी प्रकार विद्वानों के बीच घिरे रहनेवाला मूर्ख व्यक्ति भी ज्ञानवान् नहीं हो सकता। इसे स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस व्यक्ति में सोचने-समझने की शक्ति न हो, जो ग्रहण करने का इच्छुक न हो, उसे अनेक प्रयास करने के बाद भी ज्ञानवान् नहीं बनाया जा सकता। ऐसे लोगों को दिया गया उपदेश व्यर्थ जाता है। इसके लिए मनुष्य की जिज्ञासा का होना आवश्यक है।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।

चाणक्य कहते हैं कि दर्पण की रचना नेत्रें से युक्त व्यक्तियों के लिए की गई है। इसमें वे स्वयं को देख सकते हैं। लेकिन नेत्रहीनों के लिए दर्पण महत्त्वहीन होता है। इसके लिए दर्पण को दोषी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार वेद-पुराणों की रचना बुद्धिमान एवं विवेकशील व्यक्तियों के लिए की गई है। ये केवल उन्हीं के लिए कल्याणकारी हैं, जो सोचने-समझने की शक्ति रखते हैं। इनसे मूर्खों का कल्याण नहीं हो सकता।

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत्॥

दुर्जन व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार बार-बार धोने पर भी मल त्यागनेवाली इंद्रिय शुद्ध नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञानयुक्त अनेक उपदेश देने के बाद भी दुर्जन व्यक्ति के स्वभाव को बदला नहीं जा सकता। उसे सुधारने के लिए किए गए सभी प्रयास विफल हो जाते हैं।

आप्तद्वेषाद् भवेन्मृत्युः परद्वेषाद् धनक्षयः।
राजद्वेषाद् भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने द्वेष के परिणामों का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि जो मनुष्य संत पुरुषों से द्वेष करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। शत्रुओं से द्वेष होने पर प्राणों के साथ-साथ धन की भी हानि होती है। राजा से द्वेष करने पर प्राण एवं धन सहित मान-सम्मान का भी नाश हो जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण से द्वेष करने के परिणामस्वरूप मनुष्य का धन-प्राण-सम्मान जाता ही है, साथ में उसके संपूर्ण कुल का भी नाश हो जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सज्जन पुरुषों का सदैव आशीष प्राप्त करे। उनके आशीर्वाद से उसके धन और वंश में वृद्धि होगी। साथ ही वह दीर्घायु होकर विभिन्न सुखों को भोगेगा।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभोजनम्।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने ऐसे व्यक्ति को बुद्धिमान कहा है, जो निर्धन होने पर सगे-संबंधियों के साथ रहने की अपेक्षा वन में सिंह, हाथी, बाघ आदि हिंसक पशुओं के बीच वृक्ष पर घर बनाकर, कंद-मूल खाकर तथा जल पीकर, घास-फूस की शय्या पर सोकर तथा पत्तों से शरीर ढककर जीवन-निर्वाह करना अधिक उपयुक्त समझता है। इसे स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि निर्धन होने के कारण व्यक्ति को अनेक बार उपहास का पात्र बनना पड़ता है। यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक और मानसिक तनाव पैदा करनेवाली होती है। धनाभाव के कारण कोई भी उसका साथ नहीं देता। तब बुद्धिमत्ता इसी में निहित है कि मनुष्य उनका साथ छोड़कर वन में निवास कर ले।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

अमर वृक्ष की कल्पना को साकार रूप प्रदान करते हुए चाणक्य कहते हैं कि पृथ्वी पर ब्राह्मण ही अमर वृक्ष का रूप है। संध्या उसकी जड़ तथा वेद उसकी शाखाएँ हैं। धर्म-कर्म उसकी शाखाओं पर लगने वाले सुंदर पत्ते हैं। वृक्ष की जड़ को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि संपूर्ण वृक्ष जड़ पर टिका होता है। यदि जड़ नष्ट या कमजोर हो जाए तो वृक्ष को सूखते समय नहीं लगता। इसलिए जड़ की यथासंभव रक्षा करनी चाहिए।

माता च कमलादेवी पिता देवो जनार्द्रनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य कहते हैं कि जिसकी माता स्वयं लक्ष्मी हों, पिता भगवान् विष्णु हों तथा भक्तजन उसके सगे-संबंधियों की श्रेणी में आते हों, ऐसा व्यक्ति संसार में श्रेष्ठ होता है। उसके लिए तीनों लोक ही अपने देश के समान हो जाते हैं—अर्थात् वह तीनों लोकों का स्वामी हो जाता है। लेकिन ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए मनुष्य में सज्जनता, परोपकार, सहनशीलता तथा दानवीरता के गुण होने चाहिए।

एकवृक्षसमारूढा नाना वर्णाः विहङ्गमाः।
प्रभाते दिक्षु दशसु का तत्र परिदेवना॥

जीवन और उसकी मृत्यु से संबंधित गूढ़ कथन को चाणक्य ने अत्यंत सरलता से स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि कौआ, कबूतर, चिड़िया, तोता-ये सभी विभिन्न जाति और वर्ण के पक्षी होते हुए भी रात्रि-समय एक ही वृक्ष पर विश्राम करते हैं। लेकिन प्रातः होते ही अपने-अपने मार्ग की ओर उड़ जाते हैं। जीवात्माएँ भी इसी प्रकार परिवार रूपी वृक्ष पर कुछ समय के लिए बसेरा करती हैं। तदनंतर नियत समय आने पर वृक्ष को छोड़कर उड़ जाती हैं। इसलिए उनके जाने पर दुःखी या शोकातुर नहीं होना चाहिए। सृष्टि का यही नियम है और इसी नियम से संपूर्ण ब्रह्मांड संचालित होता है। इसे बदलना सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी के लिए भी असंभव है।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

चाणक्य कहते हैं कि आवश्यकता के समय केवल बुद्धिमान व्यक्ति ही अपने बल का यथोचित उपयोग कर सकता है। इसलिए कम होने पर भी उसका बल अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके विपरीत किसी मूर्ख का बल अतुल्य होने पर भी वह महत्त्वहीन है, क्योंकि बुद्धि के अभाव में वह कभी भी उसका उचित उपयोग नहीं कर पाएगा। इसलिए बल कम या अधिक होने की अपेक्षा बुद्धि का अधिक होना महत्त्वपूर्ण होता है। यही कारण है कि बुद्धि-बल द्वारा एक खरगोश ने सिंह को कुएँ में गिराकर मार डाला था।

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते
नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निर्मयेत्।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते॥

इस श्लोक द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए चाणक्य कहते हैं कि श्रीविष्णु ही समस्त संसार के लिए भोजन उपलब्ध करवाते हैं। इसलिए उन्हें पालनहार कहा जाता है। यदि वे सृष्टि के पालनहार न होते तो शिशु के जन्म के साथ माता के स्तनों में दुग्ध नहीं आता। हे श्रीविष्णु! हे भगवन्! मैं चाणक्य आपकी इस महानता के समक्ष नतमस्तक हूँ और आपको कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। लेकिन यहाँ चाणक्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि मनुष्य को ईश्वर पर पूर्णतया विश्वास रखना चाहिए, लेकिन वह पुरुषार्थ से मुख न मोड़े। जब वह पुरुषार्थ करेगा, तभी ईश्वर उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण करेंगे।

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम्।
यथा सुराणाममृते स्थितेऽपि स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः॥

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाओं को सीखने और समझने की इच्छा प्रकट की है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अमृत पीने के बाद भी देवगण सदैव अप्सराओं के अधरों के रस का पान करने के लिए व्याकुल रहते हैं, उसी प्रकार संस्कृत भाषा को भलीभाँति जानने के बाद भी मेरे मन में संसार की अन्य श्रेष्ठ भाषाओं को जानने की ललक है, क्योंकि इन भाषाओं को जानने के बाद मनुष्य विश्व में यथोचित मान-सम्मान प्राप्त करता है। चाणक्य का यह श्लोक वर्तमान परिवेश में एकदम सटीक बैठता है।

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम्॥

भोजन में घी को चाणक्य ने सबसे अधिक शक्तिवर्द्धक और पौष्टिक बताया है। वे कहते हैं कि अन्न की अपेक्षा आटा दस गुना अधिक शक्तिवर्द्धक होता है। आटे से दस गुना अधिक शक्ति दूध में होती है। मांस दूध से भी आठ गुना अधिक बल प्रदान करता है। लेकिन घी इन सबसे बढ़कर होता है। इसका नित्य सेवन मनुष्य की शक्ति में अपरिमित वृद्धि कर देता है। इसलिए भोजन में घी की उचित मात्र अवश्य लेनी चाहिए।

शाकेन रोगा वर्धन्ते पयसा वर्धते तनुः।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते॥

खाद्य पदार्थों के विषय में चाणक्य कहते हैं कि साग-सब्जी का अधिक सेवन रोगों को निमंत्रण देता है, जबकि दूध का प्रयोग शरीर-वृद्धि में सहायक होता है। घी बल एवं वीर्य में बढ़ोतरी करता है तथा मांस का सेवन चरबी को बढ़ाता है। इसलिए मनुष्य को साग-सब्जी एवं मांस की अपेक्षा दूध और घी का अधिक सेवन करना चाहिए। दूध जहाँ उसके शारीरिक विकास के लिए उत्तम है, वहीं घी उसे शक्ति प्रदान करेगा। इसके विपरीत साग-सब्जी एवं मांस का सेवन मनुष्य के शरीर को विकृत कर देगा।

ग्यारहवाँ अध्याय

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वार: सहजा गुणा:।।

चाणक्य ने दानशीलता, मृदु वाणी, धैर्य और उचित-अनुचित के ज्ञान को श्रेष्ठ गुणों में सम्मिलित किया है। लेकिन वे कहते हैं कि ये गुण मनुष्य में जन्मजात होते हैं। जब शिशु जन्म लेता है तो ये स्वाभाविक रूप से उसमें विद्यमान होते हैं। यदि कोई व्यक्ति अभ्यास द्वारा इन्हें प्राप्त करना चाहे तो यह असंभव है।

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत्।
स्वयमेव लयं याति यथा राजाऽन्यधर्मत:।।

मनुष्य के सगे-संबंधी ही उसके जीवन का वास्तविक सहारा होते हैं। यदि वह उन्हें छोड़कर अन्य लोगों की ओर दौड़ता है तो उसका उसी प्रकार शीघ्र नाश हो जाता है, जिस प्रकार कोई राजा अधर्मयुक्त आचरण करके नष्ट हो जाता है। यहाँ चाणक्य स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिस प्रकार अपने धर्म से विमुख होकर राजा का पतन निश्चित होता है, उसी प्रकार अपने धर्म को त्यागकर दूसरे धर्म की ओर आकृष्ट होनेवाले व्यक्ति शक्ति-संपन्न होते हुए भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य को अपने धर्म से कभी विमुख नहीं होना चाहिए।

हस्ती स्थूलतनु: स चाङ्कुशवश: किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो
दीपो प्रज्वलिते प्रणश्यति तम: किं दीपमात्रं तम:।
वज्रेणापि हता: पतन्ति गिरय: किं वज्रमात्रो गिरिस्
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु क: प्रत्यय:।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने विशालता पर बुद्धि, चतुराई, ओज और बल की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया है। वे कहते हैं कि एक छोटे से अंकुश द्वारा शक्तिशाली हाथी को वश में किया जाता है दीपक की एक छोटी सी लौ गहन अंधकार को चीर देती है एक हथौड़ा बड़े-बड़े पर्वतों को तोड़ डालता है। अर्थात् बुद्धि, चातुर्य, ओज और बल—इन गुणों से युक्त मनुष्य बड़ी-से-बड़ी समस्या का भी निदान कर सकता है। श्रेष्ठता विशालकाय होने में नहीं अपितु इन चार गुणों में निहित है।

कलौ दशसहस्रेषु हरिस्त्यजति मेदिनीम्।
तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवता।।

पुराणों में वर्णित है कि कलियुग के अंत के साथ ही महाप्रलय का समय आरंभ हो जाता है। इस प्रलय में संपूर्ण पृथ्वी सहित संपूर्ण ब्रह्मांड जलमग्न हो जाता है। इस श्लोक द्वारा चाणक्य प्रलय से पूर्व के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब कलियुग समाप्त होने में दस हजार वर्ष शेष रह जाएँगे, उस समय भगवान् विष्णु पृथ्वी का

त्याग कर देंगे। पाँच हजार वर्ष शेष रहने पर गंगा नदी पृथ्वी से विलुप्त हो जाएगी। ग्राम-देवता भी ढाई हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी त्याग देंगे। इस प्रकार कलियुग में जब संपूर्ण पृथ्वी पापियों, अधर्मियों और अत्याचारियों से भर जाएगी, तब भगवान् पृथ्वी का त्याग कर देंगे।

गृहाऽऽसक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता॥

चाणक्य के अनुसार, जो विद्यार्थी मोह-माया और सुखों में लीन होकर विद्या-प्राप्ति की बात सोचते हैं, उन्हें अपने उद्देश्य में कभी सफलता नहीं मिलती। वस्तुतः सुख और मोह-माया ही विद्या-प्राप्ति के मार्ग के सबसे बड़े बाधक हैं। मांस-भक्षण से मनुष्य तामसी प्रवृत्ति का हो जाता है। ऐसी स्थिति में दया, परोपकार, धैर्य और संतोष आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। इसलिए उससे दया की अपेक्षा रखना मूर्खता है। धन के लोभी से सत्य का अनुसरण करने की आशा नहीं करनी चाहिए। धन-प्राप्ति हेतु वह बड़े-से-बड़ा झूठ बोलने से भी पीछे नहीं हटता। इसी प्रकार कामांध व्यक्ति पवित्रता के अर्थ और महत्त्व से अनभिज्ञ होता है। ऐसा मनुष्य केवल व्यभिचार को बढ़ाता है।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति॥

दुष्ट एवं दुर्जन व्यक्ति का स्वभाव अत्यंत रहस्यमय और परिस्थिति के अनुसार बदलता है। इसलिए उन्हें समझना किसी के वश में नहीं है। इसे स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार दूध, घी और शक्कर से सींचने पर भी नीम अपना स्वभाव अर्थात् कड़वापन नहीं छोड़ता, उसी प्रकार अनेक उपदेश देने तथा अपनत्व दिखाने के बाद भी दुर्जन को सज्जन बनाना असंभव है। मनुष्य का स्वभाव उसके उन जन्मजात गुणों पर आधारित होता है, जिसे ब्रह्माजी ने उसके भाग्य में लिखा है। वह इन्हीं के अनुसार आचरण करता है। इसलिए सज्जन मनुष्य को इसमें अपना समय नहीं गँवाना चाहिए।

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं च सत्॥

चाणक्य ने शरीर की शुद्धता की अपेक्षा मन की शुद्धता को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि यदि मनुष्य का मन पापों एवं अशुद्धियों से परिपूर्ण है तो अनेक तीर्थ-स्नान करने के बाद भी उसकी आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती। जिस प्रकार जलाए जाने पर भी मदिरा का पात्र गंध नहीं त्यागता, उसी प्रकार पवित्र जल में स्नान करने के बाद भी मनुष्य की अशुद्धता दूर नहीं होती। इसलिए चाणक्य के अनुसार, मनुष्य को बाहरी शुद्धता की अपेक्षा मन को शुद्ध करना चाहिए। इसी में उसका कल्याण निहित है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः॥

दुर्जन व्यक्ति द्वारा गुणी एवं सज्जन व्यक्ति की निंदा तथा तिरस्कार किए जाने पर चाणक्य कहते हैं कि यदि एक मूर्ख हीरे को पत्थर समझ ले तो उसमें हीरे का कोई दोष नहीं है, वह तब भी हीरा ही रहेगा। अर्थात् दुर्जन व्यक्ति कितना भी भला-बुरा कह ले, कितनी भी निंदा या अपमान कर ले; लेकिन गुणी व्यक्ति के गुण यथावत् बने रहते हैं, उनका महत्त्व कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में चाणक्य ने दुर्जन व्यक्ति की तुलना उस भीलनी से की है, जो गजमुक्ता मणि को व्यर्थ जानकर फेंक देती है और रक्ताभ रत्तियों की माला धारण कर प्रसन्न होती है। अर्थात्

विद्वान् एवं गुणयुक्त मनुष्य की निंदा करनेवाला मूर्ख कहलाता है।

यस्तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जति।
युगकोटिसहस्रं तु स्वर्गलोके महीयते।।

चाणक्य कहते हैं कि भोजन के समय मनुष्य को मौन रहना चाहिए। इसके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि एक वर्ष तक नियमित मौन धारण कर भोजन करनेवाला मनुष्य करोड़ों युगों तक स्वर्ग का सुख भोगता है। देवगण भी उसकी नित्य पूजा करते हैं।

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं शृङ्गारकौतुके।
अतिनिद्राऽतिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्।।

चाणक्य ने विद्या-प्राप्ति को कठोर तप के समान कहा है। जिस प्रकार तपस्वी स्वयं को तप की अग्नि में तपाकर पुण्य अर्जित करते हैं, उसी प्रकार विद्यार्थी कठिन मार्ग पर चलते हुए विद्या रूपी अमूल्य धन प्राप्त करता है। लेकिन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार तथा स्वाद, शंृगार, कौतुक, अतिनिद्रा एवं अतिसेवा उसके मार्ग की बाधाएँ हैं। इसलिए उसे इनसे बचना चाहिए। तभी वह शिक्षा-प्राप्ति में सफलता प्राप्त करेगा।

अकृष्टफलमूलेन वनवासरतः सदा।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते।।

चाणक्य की दृष्टि में केवल वे ब्राह्मण ही ऋषि की श्रेणी में आते हैं जो वन में उग आए कंद-मूल-फल आदि वनस्पति खाकर जीवनयापन करते हैं तथा वनवास को श्रेष्ठ मानकर नित्य श्राद्ध-तर्पण करते हैं। इस कथन को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि उपलब्ध साधनों में संतुष्ट रहनेवाला तथा नित्य ईश्वर का मनन-चिंतन करनेवाला मनुष्य ही सज्जन कहलाता है। इसके विपरीत लोभी, असंतुष्ट एवं नास्तिक व्यक्ति दुर्जन होते हैं।

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते।।

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने ब्राह्मण-धर्म के नियमों का उल्लेख किया है। उनके कर्मों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि ब्राह्मण को दिन में केवल एक ही बार भोजन करना चाहिए, इसी में वह संतुष्ट हो जाए। उसका अधिकांश समय यज्ञ, हवन एवं वेदों के अध्ययन में व्यतीत हो। साथ-ही-साथ वह यथाशक्ति दान देने और ग्रहण करने के गुण से युक्त हो। इसके अतिरिक्त विकारों को नियंत्रित कर केवल संतान-प्राप्ति की इच्छा से समयानुसार सहवास करे। जो मनुष्य इनका विधिवत् पालन करता है, वास्तव में वही ब्राह्मण कहलाने योग्य है।

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः।
वाणिज्यकृषिकर्ता यः स विप्रो वैश्य उच्यते।।

वेदों में चार वर्ण कहे गए हैं। इनका निर्धारण व्यक्ति के कुल अथवा जाति की अपेक्षा उसके कार्य के अनुरूप किया गया है। वैश्य के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि लौकिक कर्मों में संलग्न होकर पशुपालन, खेतीबाड़ी तथा व्यापार आदि करनेवाला मनुष्य वैश्य कहलाता है। यदि ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति यह कार्य करे तो उसे भी वैश्य

समझना चाहिए।

लाक्षादितैलनीलानां कुसुम्भमधुसर्पिषाम्।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते।।

शूद्र के विषय में चाणक्य कहते हैं कि लाख, तेल, नील, कपड़े रँगने के रंग, शहद, घी, मदिरा और मांस आदि का व्यापार करनेवाला शूद्र कहलाता है। उनके अनुसार यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुल में जनमा व्यक्ति भी यह कार्य करे तो उसे शूद्र वर्ण का मानना चाहिए।

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते।।

जो व्यक्ति दूसरों के सत्कर्मों में विघ्न डालनेवाला हो, ढोंग और पाखंड द्वारा लोगों को भ्रमित कर ठगता हो तथा जिसके अत्याचारों से लोग पीड़ित हों, ऐसा क्रूर व्यक्ति ब्राह्मण होते हुए भी पशु कहलाता है। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो नीच एवं अपवित्र कार्य करनेवाला मनुष्य यदि ब्राह्मण-कुल से संबंधित हो तो भी उसे पशु की श्रेणी में रखा जाता है।

वापी-कूप-तडागानामाराम-सुर-वेश्मनाम्।
उच्छेदने निराऽऽशङ्कः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते।।

चाणक्य ने ऐसे ब्राह्मण को म्लेच्छ की संज्ञा दी है, जो कुएँ, तालाब, बाग या मंदिरों को तोड़ने-फोड़ने में आनंद का अनुभव करता हो। उनके अनुसार, परोपकार एवं सामाजिक कर्तव्यों से विमुख व्यक्ति ज्ञानवान् होकर भी नीच कहलाता है।

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराऽभिमर्शनम्।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते।।

जो व्यक्ति संत-गुरुजन के धन की चोरी करता हो, पर-स्त्रियों के साथ संभोग में लिप्त हो तथा किसी से भी माँगकर खाने में जिसे संकोच न हो, ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण होते हुए भी चांडाल की श्रेणी में आता है। ऐसे व्यक्ति उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी नीच कहे जाते हैं। समाज में इन्हें तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता है।

देयं भोज्यधनं सदा सुकृतिभिर्नो सञ्चितव्यं कदा
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता।
अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात् सञ्चितम्
निर्वाणादिति पाणिपादयुगले घर्षन्त्यहो मक्षिकाः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य सीख देते हुए कहते हैं कि राजा तथा सज्जन मनुष्य को धन का संचय भोगों की अपेक्षा परोपकार एवं दान हेतु करना चाहिए। इसका पालन करके ही दानवीर कर्ण, दैत्यराज बलि तथा विक्रमादित्य

संसार में प्रसिद्ध हुए। आज भी उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है। इसके विपरीत मधुमक्खियों का संचित मधु भी दान के अभाव में नष्ट हो जाता है। इस कथन को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि यद्यपि मनुष्य को संग्रह करना चाहिए, लेकिन इसके साथ ही उसे दानादि कर्म भी करते रहने चाहिए। इससे जहाँ एक ओर वह मान-सम्मान प्राप्त करता है, वहीं दूसरी ओर उसे परलोक में अक्षुण्ण सुख प्राप्त होते हैं।

बारहवाँ अध्याय

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधयः कान्ता प्रियलापिनी
इच्छापूर्तिधनं सन्मित्रं स्वयोषिति रतिः स्वाऽऽज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाऽऽश्रमः॥

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने सुखी गृहस्थ का वर्णन किया है। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि मनुष्य का जीवन तभी सुखमय कहा जा सकता है जब उसका घर-परिवार सुखों से परिपूर्ण हो। जहाँ सदैव खुशियों और आनंद का वास हो, पत्नी मृदुभाषिणी एवं पतिव्रता हो, संतान बुद्धिमान और सुशिक्षित हो पर्याप्त धन की उपलब्धता हो, सेवक आज्ञाकारी और स्वामीभक्त हो जहाँ अतिथियों का यथोचित आदर-सत्कार किया जाता हो, ईश्वर की भक्ति का वास हो तथा संत-महात्माओं का सत्कार हो—ऐसा घर ही सुखों से युक्त होता है। इस स्वर्ग-तुल्य घर में वास करनेवाले मनुष्य अत्यंत सौभाग्यशाली होते हैं।

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यत् श्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम्।
अनन्तपारं समुपैति राजन् यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः॥

दान की महिमा बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि दिया गया दान कभी व्यर्थ नहीं जाता है। अपितु जितना दान दिया जाता है, उससे दस गुना अधिक होकर वह व्यक्ति को पुनः प्राप्त हो जाता है। इसलिए मनुष्य को दुःख और कष्टों से ग्रस्त ब्राह्मणों को यथाशक्ति दान-दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिए। ऐसा करने से उसका दान उसके लिए धन-प्राप्ति के मार्ग प्रशस्त करता है।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम्।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
इत्थं ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥

लोक-व्यवहार के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को लोक-व्यवहार में निपुण होना चाहिए। इससे वह सदैव सुखी रहता है। लोक-व्यवहार के अंतर्गत सेवकों से उदारता-युक्त व्यवहार, सगे-संबंधियों से प्रेमयुक्त व्यवहार तथा दुष्टों के प्रति कठोरता का व्यवहार सम्मिलित होता है। इसके अतिरिक्त सज्जन एवं विद्वानों के प्रति स्नेह तथा नम्रता का भाव, शत्रुओं के समक्ष साहसयुक्त व्यवहार, गुरुजन के प्रति धीरता और सौम्यता का भाव तथा स्त्रियों के प्रति वाक्-चातुर्य का भाव भी लोक-व्यवहार का हिस्सा ही गिना जाता है। इसका अनुपालन करनेवाला व्यक्ति ही समाज में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

हस्तो दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो
रे रे जम्बुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने नीच एवं स्वार्थी मनुष्यों का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जो दानादि से विमुख रहते हैं, वेदों के श्रवण को महत्त्वहीन मानते हैं, जिनकी दृष्टि में संत-महात्माओं के दर्शन निरर्थक हैं, जिन्होंने कभी भी तीर्थ-यात्र का सुख नहीं भोगा, जिनके पेट पाप की कमाई से भरे हुए हैं, जिन्होंने अभिमान और अहंकार के आवरण से खुद को ढक रखा है, वे मनुष्य नीच, दुष्ट और स्वार्थी कहे जाते हैं। वे केवल अपने लिए ही जीते हैं, दूसरों से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं होता। इन मनुष्यों को संबोधित करते हुए चाणक्य कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों का जीवन व्यर्थ है। यदि स्पष्ट कहा जाए तो ये पृथ्वी पर बोझ के समान हैं। ऐसे जीवन से तो मृत्यु भली है। इसलिए जितना शीघ्र हो सके, इन्हें शरीर त्याग देना चाहिए, अन्यथा जीवित रहकर ये पृथ्वी पर पाप और अवगुणों का प्रसार करेंगे।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥

चाणक्य कहते हैं कि ईश्वर ने मनुष्य के भाग्य में जो लिख दिया, उसे मिटाना असंभव है। मनुष्य जीवन में वही कर्म करता और भोगता है, जो वह लिखवाकर लाया है। यदि करील का झाड़ वसंत ऋतु में भी पत्तों से रहित रहता है तो इसमें वसंत का कोई दोष नहीं होता; उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता तो इसमें सूर्य को दोष देना व्यर्थ है यदि चातक के मुख में वर्षा की बूँदें नहीं गिरतीं तो इसमें मेघों का दोष नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य जीवन भर जिन दुःखों एवं कष्टों को भोगता है, उसमें उसका कोई दोष नहीं होता। यह उसके भाग्य में पहले से ही लिखे हुए होते हैं।

सत्सङ्गाद् भवति हि साधुता खलानां
साधूनां न हि खलसङ्गमात् खलत्वम्।
आमोदं कुसुम-भवं मृदेव धत्ते
मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति॥

यद्यपि कहा गया है कि मनुष्य पर बुरी या अच्छी संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। किंतु चाणक्य का मानना है कि सज्जन मनुष्य कितना भी दुर्जनों की संगति में रह ले, लेकिन उस पर उनकी संगति का कभी असर नहीं पड़ता। जिस प्रकार चंदन वृक्ष पर लिपटे साँपों के जहरीले होने पर भी चंदन जहरीला नहीं होता और जिस प्रकार मिट्टी में फलित हुआ पुष्प मिट्टी की गंध से सराबोर नहीं होता, उसी प्रकार दुर्जन मनुष्यों की संगति में रहकर भी सज्जन मनुष्य अपनी सज्जनता और सत्कर्मों को नहीं भूलता।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

साधु अथवा सज्जन पुरुष के दर्शन मात्र से पुण्य फल का आशीर्वाद प्राप्त किया जा सकता है जबकि पवित्र तीर्थ का आशीर्वाद पाने के लिए हमें लंबी यात्रएँ करनी पड़ती हैं।

विप्राऽस्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि।
को दक्षः परदारवित्तहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः
कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम्॥

एक आगंतुक ने एक ब्राह्मण से पूछा, "इस शहर में महान् कौन है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "ताड़ के वृक्षों का समूह।" आगंतुक ने फिर पूछा, "सबसे परोपकारी व्यक्ति कौन है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "धोबी—जो प्रातः कपड़े ले जाता है और सायं लौटा देता है। वह सबसे परोपकारी व्यक्ति है।" उसने फिर प्रश्न किया, "सबसे योग्य व्यक्ति कौन है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "दूसरों की पत्नियाँ और धन चुराने में हर कोई योग्य है।" आगंतुक ने फिर प्रश्न किया, "ऐसे शहर में आप कैसे रह लेते हैं?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "जैसे एक कीड़ा गंदगी में भी जी लेता है, वैसे ही।" इस श्लोक में चाणक्य ने समाज में व्याप्त दोषों की ओर संकेत किया है।

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि।
स्वाहा-स्वधाकार-विवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥

चाणक्य ने ऐसे घर को श्मशान-तुल्य माना है, जिसमें ब्राह्मणों का मान-सम्मान न होता हो, जहाँ निवास करनेवाले मनुष्य दान-दक्षिणा से विमुख रहते हों, जहाँ वेदों के पठन और श्रवण की रीति न हो, यज्ञ-हवनादि कर्म से जो स्थान रिक्त हो। वे कहते हैं कि ऐसे घर में सदैव अज्ञानता, दरिद्रता, रोग, दुःखों एवं कष्टों का वास होता है। ऐसे घर में निवास करनेवाले मनुष्य मुर्दों के समान होते हैं। इसलिए गृहस्थ जीवन के सुखों के लिए मनुष्यों को पूजा-अर्चना, दान-दक्षिणा तथा ब्राह्मण-सत्कार से संबंधित कर्म करते रहने चाहिए।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया स्व सा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने मोह-माया से रहित मनुष्य के वास्तविक सहचरों का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि सत्य ही एक वैरागी की माता के समान, ज्ञान पिता के समान, धर्म भाई के समान, दया बहन के समान, शांति पत्नी के समान तथा क्षमा पुत्र के समान होती है। वस्तुतः इस नाशवान् संसार में केवल ये ही उसके सच्चे बंधु-बांधव हैं। इस प्रकार संसार से विरक्त होने के बाद भी मनुष्य अकेला नहीं होता।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य-शरीर का आरंभ जहाँ जीवन से होता है, वहीं उसका अंत मृत्यु है। इसी कारणवश शरीर को नाशवान् कहा गया है। रूप, यौवन, बल, बुद्धि-सबकुछ मृत्यु के समक्ष शनैः-शनैः नष्ट हो जाता है। मृत्यु कब मनुष्य को अपने विकराल पंजों में जकड़ ले, यह कोई भी नहीं जानता। इसलिए चाणक्य ने मनुष्य को सदैव धर्म का पालन करने का परामर्श दिया है। वे कहते हैं कि जीवन का प्रत्येक क्षण सत्कर्मों में व्यतीत करना चाहिए। इसी में मनुष्य का कल्याण निहित है।

आमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः।
पत्युत्साहयुता नार्यः अहं कृष्ण-रणोत्सवः॥

उपर्युक्त श्लोक में प्राणियों के लिए विभिन्न प्रकार की आनंददायक वस्तुओं का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि ब्राह्मण के लिए भोज का आमंत्रण परम सुखदायक होता है। गौओं के लिए नित्य हरी-हरी घास की उपलब्धता आनंद प्रदान करनेवाली है। स्त्रियों के लिए पति का प्रतिदिन उत्साह में भरा रहना ही परम आनंददायक है। लेकिन चाणक्य मार-काट में स्वयं के आनंद को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि युद्ध में भयंकर मार-काट ही मेरे लिए उत्सव के समान है। इसी में मुझे सुख प्राप्त होता है।

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों को संत-सज्जन कहा है, जो पर-स्त्रियों को माता के समान समझते हैं, जिनकी दृष्टि में पराया धन मिट्टी है तथा जो सभी व्यक्तियों को अपने समान ही समझते हैं। अर्थात् चरित्रवान्, सहनशील, संतोष, परोपकार तथा सहृदयता के गुणों से युक्त व्यक्ति ही सज्जन कहलाते हैं।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघवः॥

सज्जन मनुष्य अनेक गुणों से युक्त होता है। उसमें धर्म के प्रति तत्परता, मृदु वाणी, दानशीलता, मैत्रीभाव, गुरु-भक्ति, गंभीरता, सद्-व्यवहार, परोपकार, शास्त्रज्ञता, सुंदर-सुरुचिपूर्णता और प्रसन्नतायुक्त स्वभाव आदि गुण विद्यमान होते हैं। इसके विपरीत इन गुणों से हीन मनुष्य दुर्जन कहलाता है।

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारां निधिः।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौ-
र्नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते॥

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने ईश्वर को सर्वोपरि कहा है। उनके मतानुसार संसार में ईश्वर ही एकमात्र शक्तिवान्, परम दयालु, तीनों लोकों के स्वामी तथा कण-कण में विद्यमान रहनेवाले हैं। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि कल्पवृक्ष मनुष्य की समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करता है, लेकिन वह केवल लकड़ी ही है। सुमेरु पर्वत धन के भंडार से युक्त है, लेकिन वह भी केवल पत्थर है। सूर्य की किरणें प्रकाशवान् होते हुए भी प्रचंड हैं, जबकि शीतलता और प्रकाश प्रदान करनेवाला चंद्रमा भी क्षय रोग से पीड़ित है। विशाल होते हुए भी समुद्र खारे जल से युक्त तथा कामदेव शरीररहित हैं। बलि दानवीर होते हुए भी दैत्य-कुल से संबंधित है। इसी प्रकार सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु भी एक गाय है। हे ईश्वर! इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो आप जैसे अवगुणरहित, तेजयुक्त, सहनशील, परोपकारी और भक्त-वत्सल के समक्ष टिक सके। अतः हे ईश्वर! संसार में केवल आप ही सर्वशक्तिमान हैं। कोई भी आपके समान नहीं हो सकता।

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम्।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत् कैतवम्॥

मनुष्य अपने आस-पास के प्राणियों से कुछ-न-कुछ अवश्य सीख सकता है। उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने इसी कथन को प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि जहाँ से भी शिक्षा प्राप्त हो, उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। राजपुत्रें में नम्रता और विनयशीलता का भाव होता है, अतः उनके इन गुणों को ग्रहण करके मनुष्य सहृदय बनता है। विद्वानों से स्नेह-युक्त मधुर वचन बोलने की तथा जुआरियों से मिथ्या भाषण की कला सीखनी चाहिए। इसी प्रकार स्त्रियों से छल-कपट का गुण भी ग्रहण करना चाहिए।

अनालोक्य व्ययं कर्ता ह्यनाथः कलहप्रियः।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति॥

आय से अधिक व्यय करना, बिना बात के दूसरों से लड़ना-झगड़ना तथा सभी प्रकार की स्त्रियों से संभोग करना-ये तीन कर्म मनुष्य और उसके कुल को विनाश की ओर धकेलते हैं। इसलिए मनुष्य को इनसे यथासंभव बचना चाहिए, अन्यथा शीघ्र ही उसका नाश हो जाएगा।

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत्।
आहारो ही मनुष्याणां जन्मना सह जायते॥

वर्तमान समय में कुछ मनुष्य आहार-संग्रह में लगे हुए हैं तो कुछ धन के संचय में डूबे हुए हैं। ऐसे मनुष्यों को संबोधित करते हुए चाणक्य कहते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य! शिशु के जन्म के साथ ही ईश्वर उसके पेट भरने का प्रबंध कर देता है। उसे जो कुछ मिलना है, वह कोई भी छीन नहीं सकता। इसलिए आहार एवं धन का संग्रह छोड़कर धर्म-संग्रह पर ध्यान केंद्रित करो। पेट तो पशु भी भर लेते हैं, लेकिन धर्म-कर्म करके पुण्य प्राप्त करने का सौभाग्य

केवल मनुष्य को ही प्राप्त होता है। इसलिए धर्मयुक्त कार्य करके पुण्यों का संग्रह करो। इसी से तुम्हारा लोक और परलोक सुधर जाएगा।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च।।

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है, बूँद-बूँद के मिलने से नदी बन जाती है, पाई-पाई जोड़ने पर व्यक्ति धनवान् बन जाता है। उसी प्रकार यदि निरंतर अभ्यास किया जाए तो मनुष्य के लिए कोई भी विद्या अप्राप्य नहीं रहती। ऐसे ही अगर मनुष्य नित्य धर्मयुक्त शुभ कर्म में लीन रहे तो एक दिन उसके पास पुण्यों का अथाह भंडार संभव हो जाता है। इसलिए मनुष्य को अपना अधिकतर समय सत्कर्मों में ही व्यतीत करना चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम्।।

उद्देश्यरहित दीर्घकालिक जीवन की अपेक्षा चाणक्य शुभ कर्मों से युक्त अल्पकालिक जीवन को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। वे कहते हैं कि अनेक दुःखों तथा पापों से युक्त दीर्घ जीवन अत्यंत कष्टदायक होता है। ऐसे जीवन का मनुष्य के लिए कोई महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत यदि मनुष्य का जीवन सत्कर्मों से युक्त हो तो वह अल्प होने पर भी परम सुखदायक होता है। इसलिए मनुष्य की आयु कितनी भी हो, उसे सदैव सत्कर्म करने चाहिए। इसी में उसका कल्याण निहित होता है।

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः।।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा पिछली बातों को याद करके बार-बार दुःखी होने या निराशा प्रकट करनेवाले मनुष्यों को परामर्श देते हुए चाणक्य कहते हैं कि बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता, उसमें घटित घटनाओं को बदला नहीं जा सकता। इसलिए उसे बार-बार याद करने से कोई लाभ नहीं होता। अतः मनुष्य को उसे भूल जाना चाहिए। इसी प्रकार भविष्य में क्या घटित होनेवाला है, मनुष्य इससे भी पूर्णतः अनभिज्ञ होता है। इसलिए उसका चिंतन भी व्यर्थ है। मनुष्य को केवल अपने वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यदि वह वर्तमान को सुधार लेगा तो उसका भविष्य अपने आप ही उज्ज्वल हो जाएगा।

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता।
ज्ञातयः स्वन्नपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः।।

सद्व्यवहार और उत्तम स्वभाव का महत्त्व बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य बिना अधिक परिश्रम किए केवल अच्छे आचरण और स्वभाव द्वारा ही विद्वान् व्यक्ति, सज्जन पुरुष और पिता को संतुष्ट कर सकता है। इसी प्रकार मृदु वाणी द्वारा मित्रें, बंधु-बांधवों तथा पंडितों को प्रसन्न करके संतुष्ट करें। अर्थात् श्रेष्ठ स्वभाव तथा मृदु वाणी से युक्त मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव नहीं होता।

अहो बत विचित्राणि चरितानि महाऽऽत्मनाम्।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च।।

सद्व्यवहार और उत्तम स्वभाव का महत्त्व बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य बिना अधिक परिश्रम किए केवल अच्छे आचरण और स्वभाव द्वारा ही विद्वान् व्यक्ति, सज्जन पुरुष और पिता को संतुष्ट कर सकता है। इसी प्रकार मृदु वाणी द्वारा मित्रें, बंधु-बांधवों तथा पंडितों को प्रसन्न करके संतुष्ट करें। अर्थात् श्रेष्ठ स्वभाव तथा मृदु वाणी से युक्त मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव नहीं होता।

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम्।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत् सुखम्।।

चाणक्य ने स्नेह को समस्त दुःखों की जड़ माना है। इस विचार को वे उपर्युक्त श्लोक द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य जिसके साथ भी स्नेह से बँध जाता है, उसका जीवन उसी के अनुरूप चलने लगता है। जब वह व्यक्ति दुःखी होता है तो उसे देखकर स्नेह-बंधन में बँधा मनुष्य भी दुःखी हो जाता है। इसी प्रकार वह उसके सुखों में ही अपना सुख तथा उसके भय में अपना भय देखता है। यही स्नेह जीवात्मा को बार-बार जीवन-मृत्यु के चक्र की ओर धकेलता है। इसके विपरीत, स्नेह से रहित मनुष्य के लिए सभी एक समान होते हैं। उसे न तो किसी के दुःखी होने से दुःख होता है और न ही किसी के सुखी होने से सुख। वह हृदय में सभी के लिए एक ही भाव रखता है। इसलिए विद्वान् मनुष्य को अत्यधिक स्नेह का परित्याग करके सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहिए।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्‌भविष्यो विनश्यति।।

केवल भाग्य के सहारे जीवनयापन करनेवाले मनुष्य अपने बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर लेते हैं। लेकिन जो मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा संकट की स्थिति से पूर्व अपना बचाव कर लेते हैं तथा जो विपरीत परिस्थितियों में भी जूझते रहते हैं, वे सदैव सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। चाणक्य का मानना है कि यद्यपि भाग्य को बदला नहीं जा सकता, मनुष्य जो लिखवाकर आया है, वह उसे भोगना ही होगा; लेकिन पुरुषार्थ एवं कर्म द्वारा प्रतिकूल भाग्य को भी अनुकूल बनाया जा सकता है। इसलिए मनुष्य को पुरुषार्थ से पीछे नहीं हटना चाहिए।

राज्ञिधर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः।।

जिस राज्य का राजा धार्मिक और गुणी होगा, वहाँ की प्रजा भी धार्मिक और गुणी होगी। और यदि राजा पापी होगा तो प्रजा भी वैसा ही आचरण करेगी; क्योंकि प्रजा राजा का ही अनुसरण करती है। तभी तो कहा गया है—'यथा राजा तथा प्रजा'।

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः।।

चूँकि अधर्मी व्यक्ति सदैव पाप, व्यभिचार और बुरे कर्मों को बढ़ावा देता है, समाज को उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। इसलिए चाणक्य की दृष्टि में अधर्मी मनुष्य जीवित होते हुए भी मृतक के समान है। इसके विपरीत जीवन भर शुभ एवं सत्कर्म करनेवाला मनुष्य मृत्यु के उपरांत भी स्मरणीय होता है। उसका यश और कीर्ति मृत्यु के बाद भी उसे जीवित रखती है। इसलिए मनुष्य को सत्कर्मों द्वारा मान-सम्मान एवं यश प्राप्त करना चाहिए, जिससे मृत्यु के बाद भी लोग उसे याद करके जीवित रखें।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।

धार्मिक ग्रंथों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ कहे गए हैं। इनमें से अर्थ एवं काम लोक के तथा धर्म एवं मोक्ष परलोक के पुरुषार्थ कहे गए हैं। इन चारों पुरुषार्थों में मनुष्य-जीवन की सार्थकता निहित है। बिना पुरुषार्थ के जीवन व्यर्थ है। इसलिए मनुष्य को कम-से-कम किसी एक पुरुषार्थ के लिए अवश्य प्रयत्नशील रहना चाहिए।

दह्यमाना: सुतीव्रेण नीचा: पर यशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते॥

दुष्ट एवं दुर्जन व्यक्ति की सोच एवं व्यवहार का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि दूसरों की उन्नति को देखकर ईर्ष्या करना दुर्जन व्यक्ति का जन्मजात स्वभाव होता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं भी उन्नति के लिए प्रयत्नशील होकर दूसरों को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। लेकिन असफल होने पर वे परनिंदा द्वारा स्वयं को बड़ा और दूसरों को छोटा दिखाने में अपना बड़प्पन समझते हैं। इसी प्रकार वे निरंतर योग्य व्यक्ति को भी अयोग्य सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं। ऐसी भावना से युक्त व्यक्ति ही दुर्जन होता है।

बन्धाय विषयाऽऽसक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मन:।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:॥

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने मन को समस्त बंधनों एवं दु:खों का कारण माना है। वे कहते हैं कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही ईश्वर जीवात्मा को मनुष्य-जीवन प्रदान करता है। लेकिन काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारों में लिप्त होकर मनुष्य अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर से भटक जाता है। इसका एकमात्र कारण मन है। मन ही मनुष्य को विषय-वासनाओं की ओर धकेलकर उसे पाप-कर्म की ओर अग्रसर करता है। मन के वशीभूत हुआ मनुष्य जीवन-मृत्यु के चक्र से कभी मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह मन को समस्त विकारों से रहित करके अपने वश में करे। तभी परलोक में उसका कल्याण संभव है।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधय:॥

मनुष्य-देह नाशवान् है, इसलिए देह का अभिमान नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य अहंकार-रहित होकर मन में ईश्वर-भक्ति की लौ प्रज्वलित कर लेता है, उसका मन जहाँ कहीं जाता है, वह वहीं समाधि की स्थिति में आ जाता है। जिस मनुष्य को शरीर और आत्मा से संबंधित वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह किसी भी स्थिति में समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है।

ईप्सितं मनस: सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवाऽऽयत्तं यत: सर्वं तस्मात् सन्तोषमाश्रयेत्॥

सभी प्रकार की इच्छाओं, सुखों की कामनाओं का परित्याग कर दें। सबकुछ ईश्वर के हाथ में है—वह निर्णय करता है, किसे क्या देना है, किससे क्या लेना है। इसलिए सभी को जो है, उसमें संतोष करना सीखना चाहिए।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधयश्चाऽऽर्याः सुविचार्यैव कुर्वते॥

मनुष्य अनेक कामनाएँ करता है उनमें कुछ पूर्ण होती हैं और कुछ अपूर्ण ही रह जाती हैं। इच्छाओं का पूर्ण होना या न होना मनुष्य के भाग्य और कर्मों पर ही निर्भर करता है। मनुष्य जो कर्म करता है, उसका भाग्य उसी के अनुरूप उसे फल प्रदान करता है। यदि बुरे कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य सुखों की कामना करता है तो उसकी इच्छा कभी पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिए अच्छे फल की प्राप्ति हेतु मनुष्य को सत्कर्म करने चाहिए।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

सृष्टि का विधान है कि मनुष्य जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जिस प्रकार बछड़ा सहस्रों गौओं के बीच भी अपनी माता को पहचान लेता है, उसी प्रकार कर्म भी अपने कर्ता को ढूँढ़ लेते हैं। वस्तुतः मनुष्य का कर्मफल उसके कर्मों के साथ ही बँधा होता है। इसलिए सदैव सत्कर्म करें, जिससे श्रेष्ठ फल प्राप्त हो सके।

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम्।
जने दहति संसर्गो वने सङ्गविवर्जनम्॥

जो मनुष्य उद्देश्यरहित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उन्हें न तो घर में शांति मिल सकती है और न ही वन में। ऐसे मनुष्यों का जीवन बोझ के समान है, जिनसे किसी को लाभ नहीं होता। इसलिए जीवन में उद्देश्य का होना अत्यंत आवश्यक है। जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य निर्धारित कर लेते हैं, उनके जीवन में कभी भटकाव नहीं आता।

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥

इस श्लोक में चाणक्य समर्पण की महत्ता को स्पष्ट कर रहे हैं। वे कहते हैं कि पूर्ण समर्पण द्वारा किया गया कोई भी कार्य निष्फल नहीं जाता। जिस प्रकार खुदाई करनेवाला मनुष्य फावड़े द्वारा अथक परिश्रम करके पृथ्वी के गर्भ में संचित जल प्राप्त करता है, उसी प्रकार विद्यार्थी को भी सेवा द्वारा गुरु के पास संचित ज्ञान को अर्जित करना चाहिए।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दति।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते॥

वेदों एवं पुराणों में 'ओउम्' को एकाक्षर बीज मंत्र कहा गया है। उसी के महत्त्व को चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक द्वारा व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि बीज मंत्र ओउम् के उच्चारण द्वारा मनुष्य को ब्रह्म से संबंधित तत्त्वज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है। तत्त्वज्ञान का उपदेश देने वाला व्यक्ति समाज को सही दिशा प्रदान करता है। ऐसे गुरु की सदा वंदना करनी चाहिए। लेकिन जो उनका तिरस्कार करता है, वह मनुष्य कुत्ते की योनि में अनेक कष्ट भोगने के बाद चांडाल-योनि में उत्पन्न होता है।

युगान्ते प्रचलते मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः।
साधवः प्रतिपन्नार्थान् न चलन्ति कदाचन।।

चाणक्य यह स्वीकारते हैं कि युग के अंत में सुमेरु पर्वत अपना स्थान छोड़ देगा, सातों समुद्र अपनी मर्यादाएँ तोड़कर संपूर्ण पृथ्वी को डुबो देंगे। लेकिन उनका यह विश्वास है कि ऐसी विकट स्थिति में भी महापुरुष एवं संतजन अपनी प्रतिज्ञा व संकल्प पर अडिग रहेंगे। ऐसे सज्जन पुरुष विश्वसनीय होते हैं। इन्हीं व्यक्तियों के कारण पृथ्वी अभी तक प्रलय से बची हुई है।

चौदहवाँ अध्याय

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥

हीरा, मोती, पन्ना, स्वर्ण आदि चाणक्य की दृष्टि में पत्थर के टुकड़े मात्र हैं। वे कहते हैं कि पृथ्वी के सभी रत्नों में जल, अन्न और मधुर वचन सबसे बहुमूल्य रत्न हैं। इनके महत्त्व को बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि जल एवं अन्न द्वारा मनुष्य की प्राण-रक्षा होती है, उनके शरीर का पोषण होता है, बल-बुद्धि की वृद्धि होती है। मधुर वचनों द्वारा शत्रुओं को भी जीतकर अपना बनाया जा सकता है। इसलिए ये रत्न अत्यंत बहुमूल्य होते हैं। लेकिन जो मनुष्य इन रत्नों को छोड़कर पत्थरों के पीछे दौड़ते हैं, उनका संपूर्ण जीवन दुःखमय हो जाता है। यद्यपि उन पत्थरों के बिना रहा जा सकता है, लेकिन इन बहुमूल्य रत्नों के बिना जीवन की कल्पना असंभव है।

आत्माऽपराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च॥

मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसे अच्छे या बुरे फल की प्राप्ति होती है। विधि का यह विधान कोई बदल नहीं सकता। मनुष्य-जीवन में आनेवाले दुःख, शोक, चिंताएँ, बंधन तथा संकट पाप-कर्मों के ही फल हैं। इसके विपरीत दुःख व क्लेशरहित सुखमय जीवन सत्कर्मों से प्राप्त होता है। इसलिए मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म करने चाहिए।

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः॥

यद्यपि धन, संपत्ति, मित्र, स्त्री, राज्य बार-बार मिल सकते हैं; लेकिन मनुष्य-शरीर केवल एक ही बार प्राप्त होता है। एक बार नष्ट हो जाने के बाद इसे पुनः प्राप्त करना असंभव है। इसलिए मनुष्य को शुभ कार्य करके इस देह का सदुपयोग करना चाहिए। जो मनुष्य प्रत्येक दिन सत्कार्य करते हैं, वास्तव में उनका ही जीवन सफल होता है।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

'एकता में बड़ा बल है', प्राचीनकाल से ही यह उक्ति अत्यंत प्रसिद्ध रही है। चाणक्य ने इसी उक्ति को अपने श्लोक में स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अनेक श्वान मिलकर एक सिंह का मुकाबला कर सकते हैं, तिनके छप्पर के रूप में एकजुट होकर वर्षा का पानी रोक लेते हैं, उसी प्रकार यदि निर्बल व्यक्ति एक हो जाएँ तो वे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली का भी सामना कर सकते हैं।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः।।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य कहते हैं कि यदि जल में तेल की केवल एक बूँद डाली जाए तो भी वह पूरे पात्र में फैल जाता है। दुष्ट व्यक्ति गुप्त रहस्य छिपाकर नहीं रख सकता, उसके द्वारा रहस्य तेजी से फैलता है। यदि बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा सा ज्ञान भी अर्जित कर ले तो वह उसी से अपने ज्ञान को बढ़ा लेता है। इसी प्रकार चाणक्य कहते हैं कि यदि दान किसी सुपात्र को दिया जाए तो वह दस गुना होकर दाता को पुनः प्राप्त हो जाता है।

धर्माऽऽख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत्।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बन्धनात्।।

इस श्लोक में चाणक्य ने मनुष्य की चंचल प्रवृत्ति को व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति में स्थायित्व का अभाव होता है, इसलिए वह पल-प्रतिपल बदलती रहती है। किसी धार्मिक कथा के श्रवण अथवा श्मशान में शव को देखकर मनुष्य के मन में वैराग्य-भाव उत्पन्न हो जाता है, सांसारिक मोह-माया उसे व्यर्थ प्रतीत होती है। लेकिन वहाँ से आने के बाद वह पुनः सांसारिक बंधनों में फँसकर संग्रह में लग जाता है। मनुष्य की यही चंचल प्रवृत्ति उसके मोक्ष के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए मनुष्य को इस प्रवृत्ति पर यथासंभव अंकुश लगाना चाहिए।

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः।।

अधिकतर देखा गया है कि बुरे या नीच कर्म के बाद मनुष्य की आत्मा जाग्रत् हो उठती है और उसे अपने किए पर पश्चात्ताप होने लगता है। लेकिन बुरे कर्म करने से पूर्व ही उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाए तो वह बुरे कर्मों से सदा के लिए निवृत्त हो जाएगा। बुरे कर्मों में लिप्त दुर्जन व्यक्ति अपने साथ-साथ अपने वंश को भी कलंकित करता है। इसलिए नीच कर्म करने से बचना चाहिए।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये।
विस्मयो न हि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा।।

मनुष्य जब किसी विषय में श्रेष्ठता अथवा कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है तो उसमें अहंकार का भाव उत्पन्न होने लगता है। ऐसी स्थिति से सावधान करते हुए चाणक्य कहते हैं कि संसार में एक से बढ़कर एक दानवीर, तपस्वी, वीर, उपासक और बुद्धिमान भरे हुए हैं। इसलिए मनुष्य को अपनी दानवीरता, तप, साहस, विज्ञान, विनम्रता और नीति-निपुणता पर कभी अहंकार नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य अहंकार में डूब जाता है, वह अतिशीघ्र पापों में लिप्त होकर नष्ट हो जाता है।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने सच्चे प्रेम का महत्त्व बताया है। वे कहते हैं कि सच्चे प्रेम का बंधन मनुष्य को परस्पर

गहराई से बाँध देता है। ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति दूर हो तो भी मनुष्य उसे अपने आस-पास ही अनुभव करता है। इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति के साथ स्नेह नहीं है तो उसके पास होने पर वह असंबद्ध रहता है। इस कथन को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य का यदि ईश्वर के साथ स्नेह-बंधन जुड़ जाए तो वे सदैव निकट ही अनुभव होते हैं। इसलिए मनुष्य को भक्ति द्वारा ईश्वर से स्नेह का बंधन जोड़ लेना चाहिए।

यस्य चाप्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात् सदा प्रियम्।
व्याधो मृगवधं कर्तुं गीतं गायति सुस्वरम्॥

मधुर वाणी का महत्त्व बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार सपेरा बीन द्वारा मीठी तान छेड़कर सर्प को वश में कर लेता है, शिकारी मृग को वश में कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य मधुर वचन बोलकर किसी को भी अपने वश में कर सकता है। मीठी वाणी द्वारा वह शत्रुओं को भी जीत लेता है और उसके समस्त मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः।
सेवितव्यं मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः॥

राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री-चाणक्य के अनुसार इन चारों की न तो अधिक निकटता ठीक होती है और न ही दूरी, अन्यथा मनुष्य का सर्वस्व नष्ट हो जाता है। राजा और गुरु की निकटता से व्यक्ति अहंकारी होकर दोषयुक्त हो जाता है, जबकि दूर रहने से वह सदैव उपेक्षित रहता है। निकट आने पर अग्नि जलाकर भस्म कर देती है तथा दूर रहने पर ऊर्जा एवं प्रकाश की कमी हो जाती है। स्त्री की निकटता अनेक विकार उत्पन्न करती है तथा दूर रहने पर उसके पथभ्रष्ट होने का भय रहता है। इस स्थिति से बचने के लिए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को मध्य-मार्ग द्वारा इसका उपाय निकालना चाहिए। वह प्रयास करे कि न तो इनके अधिक निकट आए और न ही अधिक दूर हो।

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट्॥

चाणक्य ने इस श्लोक द्वारा कुछ ऐसे प्राणियों का उल्लेख किया है, जिनसे व्यवहार करते समय मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए। वे कहते हैं कि अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख व्यक्ति, साँप और राजपरिवार-ये मनुष्य के लिए उपयोगी तो हैं ही, लेकिन असावधान रहने पर उसके लिए विनाशकारी भी बन जाते हैं। इसलिए इनके साथ सोच-विचार कर व्यवहार करना चाहिए।

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्॥

चाणक्य ऐसे मनुष्य के जीवन को सार्थक मानते हैं जो दया, प्रेम, परोपकार, सहनशीलता आदि गुणों से परिपूर्ण है। वस्तुतः उनकी दृष्टि में ऐसे मनुष्य ही जीवन जीने के वास्तविक पात्र होते हैं। इन गुणों के अभाव में मनुष्य-जीवन निरर्थक है। इसलिए उपर्युक्त गुणों को ग्रहण करना चाहिए, जिससे मनुष्य का जीवन सफल हो सके।

यदीच्छसी वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय।।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य परनिंदा के विषय में अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि परनिंदा समस्त कर्मों में अत्यंत नीच और बुरा कर्म है। यदि मनुष्य इस कर्म को त्याग दे तो वह संपूर्ण संसार को अपने वश में कर सकता है। अर्थात् निंदा को त्यागने से समस्त सुख मनुष्य के अनुकूल हो जाते हैं।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम्।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डित:।।

चाणक्य के अनुसार केवल वही व्यक्ति बुद्धिमान है, जो समय के अनुरूप वार्त्ता करे, शक्ति के अनुरूप पराक्रम करे तथा सामर्थ्य के अनुरूप क्रोध करे। परंतु यदि मनुष्य प्रसंग से हटकर बात करे, शक्ति के प्रतिकूल आचरण करे तथा अनावश्यक क्रोध करे तो वह बुद्धिमान होकर भी मूर्ख कहलाता है।

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षित:।
कुणप: कामिनी मांसं योगिभि: कामिभि: श्वभि:।।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य कहते हैं कि एक वस्तु को विभिन्न लोग अलग-अलग दृष्टि से देखते हैं। योगी के लिए स्त्री जहाँ शव-तुल्य है, वहीं कामांध व्यक्ति को वह रूप-सौंदर्य की प्रतिमा दिखाई देती है। श्वान के लिए वह मांस के पिंड के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यहाँ चाणक्य स्पष्ट करना चाहते हैं कि मनुष्य का दृष्टिकोण ही वस्तु के महत्त्व को कम या अधिक करता है। वह जैसा देखना चाहता है, वह वस्तु वैसी ही दिखाई देती है।

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम्।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत्।।

चाणक्य ने विद्वानों को कुछ बातें गुप्त रखने का परामर्श दिया है। वे कहते हैं कि विद्वान् व्यक्ति को अचूक औषधि का ज्ञान, धर्माचरण, घर की समस्याएँ, स्त्री-संभोग, कुभोजन तथा निंदित वचनों का कभी भी किसी दूसरे व्यक्ति के समक्ष उल्लेख नहीं करना चाहिए। ऐसी बातें केवल अपने तक रहनी चाहिए। लेकिन यदि वह इन्हें प्रचारित करता है तो उसका विद्वान् होना व्यर्थ है। उसकी तुलना मूर्ख से की जाएगी।

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासरा:।
यावत्सर्वजना नन्ददायिनी वाक्प्रवर्तते।।

जब तक वसंत ऋतु का आगमन नहीं होता, तब तक कोयल मौन रहती है किंतु वसंत के आगमन के साथ ही वह अपनी मधुर वाणी से दसों दिशाओं को गुंजायमान करने लगती है। इस कथन द्वारा चाणक्य ने विद्वानों को अत्यंत गूढ़ परामर्श दिया है। वे कहते हैं कि उचित समय पर ही बुद्धिमान व्यक्ति को उसके अनुकूल कार्य करने चाहिए। इससे कार्यों में अवश्य सफलता प्राप्त होती है। इसके विपरीत समय को देखे बिना कार्य करनेवाले सदैव असफलता का मुख देखते हैं।

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम्।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति॥

यदि धार्मिक कार्यों में चूक हो जाए तो उसका फल निरर्थक हो जाता है। यदि भली-भाँति उपयोग न किया जाए तो प्राणप्रदायक औषधियाँ प्राणों का हरण भी कर लेती हैं। धन एवं अन्न का अत्यधिक उपयोग दरिद्रता और निर्धनता को आमंत्रित करता है। गुरु के आदेश का यथोचित पालन न करने से अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसलिए चाणक्य ने धर्म, औषधियों, धन, धान्य तथा गुरु के आदेश का सावधानीपूर्वक पालन करने का निर्देश दिया है।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

जिन मनुष्यों में आत्म-कल्याण की भावना अत्यंत बलवती है, उनका मार्गदर्शन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को दुर्जन की संगति त्यागकर सज्जन पुरुषों की संगति ग्रहण करनी चाहिए। इसके प्रभाव से विषय-वासनाएँ तथा अपवित्र विचारों का नाश हो जाता है और मनुष्य सन्मार्ग की ओर अग्रसर होता है। अर्थात् मोह-माया एवं विषय-वासनाओं का त्याग करके मनुष्य को ईश्वर-भक्ति और परमार्थ में डूब जाना चाहिए। इसी में उसका कल्याण निहित है।

पंद्रहवाँ अध्याय

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः॥

समस्त सत्कर्मों में दया को सर्वोपरि बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि दूसरों पर दया करने से जिसका हृदय प्रसन्नता का अनुभव करता है, उसे ज्ञान एवं मोक्ष-प्राप्ति हेतु लंबी-लंबी जटाएँ धारण करने या भस्म लगाने की आवश्यकता नहीं है। सहस्र वर्षों तक कठिन तपस्या करके भी योगियों के लिए जो दुर्लभ है, वह ज्ञान एवं मोक्ष प्राणिमात्र पर दया करने से सहज ही प्राप्त हो जाता है। दया सभी धर्मों का मूलाधार है। इस गुण को ग्रहण करके ही व्यक्ति महापुरुषों की श्रेणी में स्थान प्राप्त करते हैं। इसलिए दया का भाव हृदय में सदैव धारण करना चाहिए।

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चाऽनृणी भवेत्॥

वैदिक काल से गुरुजन को ज्ञान-प्राप्ति का स्रोत कहा गया है। चाणक्य ने भी गुरु की महानता को उपर्युक्त श्लोक द्वारा स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य को ब्रह्म-शक्ति, आत्मा-परमात्मा के गूढ़ रहस्य और तत्त्वज्ञान का बोध गुरु द्वारा ही होता है। गुरु की कृपा से ही मनुष्य मोह-माया के चक्र को भेदकर ब्रह्म-दर्शन के योग्य बनता है। वस्तुतः ईश्वर और भक्त के बीच में गुरु सेतु का कार्य करता है। ऐसे गुरु का ऋण संसार की बहुमूल्य वस्तु देकर भी नहीं चुकाया जा सकता।

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानान्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम्॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने सज्जन मनुष्य को दुर्जनों से दूर रहने का परामर्श दिया है। इसका उपाय बताते हुए वे कहते हैं कि दुर्जन व्यक्ति काँटों के समान होते हैं। इसलिए या तो उन्हें जूते से मसल दें या उन्हें देखकर अपना मार्ग बदल लें। अर्थात् या तो दुर्जन व्यक्ति को बाहुबल द्वारा कुचल डालें या फिर उनसे दूर रहें।

कुचैलिनं दन्तमलोपसृष्टं बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने शारीरिक स्वच्छता और नियम-धर्म का वर्णन किया है। उनके अनुसार—जो गंदे वस्त्र धारण करते हैं, जिनके दाँत गंदे होते हैं जो भरपेट खानेवाले, कटु वचन बोलनेवाले तथा सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय सोनेवाले होते हैं, ऐसे मनुष्य को शोभा, स्वास्थ्य, सौंदर्य और ईश्वर भी त्याग देते हैं। ऐसा व्यक्ति कितना भी धनवान् या उच्च कुल का क्यों न हो, सभी उससे किनारा कर लेते हैं।

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥

धन की माया को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि यदि मनुष्य के पास धन आ जाए तो पराए भी अपने बन जाते हैं पत्नी, पुत्र, बंधु-बांधव भी स्नेह तथ अपनत्व दिखाने लगते हैं। लेकिन यदि कोई धनवान् निर्धन हो जाए तो अपने भी उससे दूर हो जाते हैं। पत्नी, पुत्र, मित्र, सगे-संबंधी—सभी एक-एक कर उसका साथ छोड़ देते हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि धन मनुष्य का सच्चा हितैषी है। जिसके पास धन है, समस्त सुख उसके अधीन हैं।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद् विनश्यति॥

धन-प्राप्ति हेतु मनुष्य अनेक नीच कर्म करता है। लेकिन चाणक्य ने इस प्रकार अर्जित धन को नाशवान् कहा है। वे कहते हैं कि पाप और अनाचार द्वारा अर्जित किया गया धन अधिक-से-अधिक दस वर्ष तक टिकता है। ग्यारहवें वर्ष उसका संपूर्ण धन सूद समेत चला जाता है। इसके विपरीत पुरुषार्थ द्वारा ईमानदारी से कमाया धन जीवनपर्यंत मनुष्य के साथ रहता है तथा उसमें निरंतर वृद्धि होती रहती है। इसलिए मनुष्य को पाप द्वारा धन अर्जित करने से बचना चाहिए।

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम्।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शङ्करभूषणम्॥

समाज में मनुष्य के सामर्थ्य का बहुत महत्त्व है। राहु के लिए अमृत भी मृत्यु का कारण बना, जबकि भगवान् शिव द्वारा ग्रहण किए जाने पर विष भी अमृत बन गया। विष पीकर भी वे जीवित रहे और नीलकंठ के नाम से प्रसिद्ध हुए। अर्थात् जो मनुष्य समर्थ है, उसके द्वारा किया गया अनुचित कार्य भी लोगों को उचित प्रतीत होता है। इसके विपरीत असमर्थ व्यक्ति द्वारा संपन्न उचित कार्य को भी लोग संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उस पर संशय प्रकट किए जाते हैं।

तद् भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं तत्सौहृदं यत् क्रियते परस्मिन्।
स प्राज्ञता या न करोति पापं दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः॥

ब्राह्मणों को भरपेट भोजन करवाने के बाद जो शेष रहे, चाणक्य ने उसे ही श्रेष्ठ भोजन कहा है। इसी प्रकार दूसरों से किया जानेवाला प्रेम ही उनकी दृष्टि में सच्चा प्रेम है। पापों से दूर रहनेवाले मनुष्य को ही वे बुद्धिमान मानते हैं तथा पाप, असत्य एवं नीच कर्म से बचानेवाला धर्म ही सच्चा धर्म है।

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः॥

यदि हीरे को पैरों से लटकाकर काँच को सिर पर सजा लिया जाए तो भी हीरे का मूल्य कम नहीं होता। अर्थात् विद्वान् को निम्न स्थान देकर मूर्ख को उच्च स्थान पर बैठाने के बाद भी विद्वान् का महत्त्व कम नहीं होता। विद्वान्

की तुलना विद्वानों से की जाएगी, जबकि मूर्ख को मूर्खों की श्रेणी में ही गिना जाएगा। विद्वान् के समक्ष ऊँच अथवा नीच कोई अर्थ नहीं रखता।

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात्॥

ज्ञान के संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि संसार ज्ञान के अथाह भंडार से परिपूर्ण है। जीवात्मा सहस्रों जन्म लेकर भी इस ज्ञान को पूरी तरह अर्जित नहीं कर सकती। परंतु जिस प्रकार जल-मिश्रित दूध में से हंस दूध का पान करके जल शेष छोड़ देता है, उसी प्रकार मनुष्य रूपी हंस को अनेक शास्त्रों एवं विद्याओं में से तत्त्व रूपी दुग्ध का पान कर लेना चाहिए। अर्थात् मनुष्य को अपने अल्पकालिक जीवन में वेदों का अर्थ भली-भाँति समझ लेना चाहिए।

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम्।
अनर्चयित्वा यो भुङ्क्ते स वै चाण्डाल उच्यते॥

दूरस्थ स्थान से आए अतिथियों, थके-हारे पथिकों तथा आश्रय हेतु आए हुए व्यक्ति ईश्वर के समान होते हैं। इसलिए उन्हें भरपेट भोजन खिलाने के बाद ही मनुष्य को भोजन ग्रहण करना चाहिए। परंतु जो मनुष्य उन्हें खिलाए बिना ही अपना पेट भर लेते हैं, चाणक्य ने उनकी तुलना चांडाल से की है।

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा॥

वेद आदि धार्मिक शास्त्रें का अध्ययन करने के बाद भी जो उनके तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं, जिन्हें आत्मा-परमात्मा का ज्ञान नहीं होता, ऐसे मनुष्य आत्मज्ञान से वंचित होते हैं। चाणक्य ने ऐसे व्यक्तियों की तुलना उस करछी से की है, जो रसयुक्त शाक में घूमने के बाद भी उसके स्वाद और सार्थकता से अनभिज्ञ होती है। ऐसे अध्ययन को चाणक्य ने व्यर्थ कहा है।

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे।
तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः॥

इस श्लोक में ब्राह्मणों के महत्त्व को दरशाते हुए चाणक्य कहते हैं कि ब्राह्मण रूपी नाव संसार रूपी समुद्र में सदैव विपरीत दिशा की ओर चलती है। इस नाव के नीचे आश्रय लेनेवाले भवसागर से पार हो जाते हैं, जबकि नाव के ऊपर बैठे लोग समुद्र में डूब जाते हैं। अर्थात् मोह-माया से ग्रस्त संसार विषय-वासनाओं की ओर धकेलता है। इसमें ब्राह्मण ही ऐसी नौका है, जो इसके विपरीत चलते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर होती है। ब्राह्मणों को सर्वोपरि माननेवाले, उनकी सेवा करनेवाले, उनके चरणों की वंदना करनेवाले तथा उनके अनुरूप व्यवहार करनेवाले व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य स्वयं को ब्राह्मणों से ऊपर मानते हैं, उन्हें तिरस्कृत करते हैं, वे जीवन-मृत्यु के चक्र से कभी मुक्त नहीं हो पाते। उन्हें बार-बार अनेक योनियों में जन्म लेकर असंख्य कष्ट झेलने पड़ते हैं।

अयममृतनिधानं नायकोऽप्यौषधीनां
अमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति॥

यद्यपि चंद्रमा को अमृत का भंडार, औषधियों का स्वामी, अमृतमय शरीरवाला तथा कांतियुक्त कहा जाता है लेकिन सूर्य के मंडल में आते ही उसका समस्त तेज नष्ट हो जाता है, वह कांतिविहीन होकर अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार यदि व्यक्ति याचक बनकर किसी व्यक्ति के घर जाता है तो उसका मान, सम्मान और अहं नष्ट हो जाता है। इसलिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए, जिससे याचक बनने का अवसर कभी उत्पन्न न हो।

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरन्दमदालसः।
विधिवशात् परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते॥

चाणक्य कहते हैं कि परदेश में व्यक्ति को समय और आय के अनुसार स्वयं को ढाल लेना चाहिए। जिस प्रकार कमलिनी के पत्तों के बीच रहनेवाला भौंरा उसके पराग के रस में डूबा रहता था, किंतु परदेश जाकर उसे कटसरैया के गंधहीन और स्वादरहित रस में ही संतोष करना पड़ा, उसी प्रकार परदेश जाकर मनुष्य को उपलब्ध भोजन से ही संतोष करना चाहिए। इससे स्वयं को वहाँ के अनुकूल परिवर्तित करने में उसे सुविधा होगी।

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद्
आबाल्याद् विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि॥

इस श्लोक में चाणक्य ने श्रीविष्णु और लक्ष्मी के संवाद को प्रस्तुत किया है। इसके अंतर्गत एक बार श्रीविष्णु ने लक्ष्मी से पूछा कि आप ब्राह्मणों से असंतुष्ट क्यों रहती हैं? तब श्रीलक्ष्मी ने कहा कि हे स्वामी! अगस्त्य मुनि ने क्रोध में भरकर मेरे पिता सागर को पी डाला था। महर्षि भृगु ने आपके वक्ष-स्थल पर लात मारी थी। श्रेष्ठ ब्राह्मणगण मेरी अपेक्षा मेरी बहन सरस्वती की पूजा करते हैं। उमापति शिव की पूजा-अर्चना करने के लिए वे नित्य मेरे निवास-स्थल कमल-पुष्पों को उजाड़ते रहते हैं। यही कारण है कि मैं ब्राह्मणों से असंतुष्ट रहती हूँ।

यद्यपि यह संवाद साधारण-सा प्रतीत होता है। लेकिन इसके द्वारा चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि ब्राह्मण कभी धन को महत्त्व नहीं देते। उनके लिए ईश्वर-भक्ति से बढ़कर कुछ नहीं है।

बन्धनानि खुल सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुदृढबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे।।

चाणक्य ने संसार के समस्त बंधनों में प्रेम-बंधन को सबसे उत्तम कहा है। इस संदर्भ में वे उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जो भौंरा लकड़ी को भी भेदने की शक्ति रखता है, वह सुकोमल कमल-पंखुड़ियों में बंद होकर निष्क्रिय हो जाता है। ऐसा सिर्फ इसलिए है, क्योंकि वह कमल-पुष्प से प्रेम करता है और उसके अहित का भय ही उसे निष्क्रिय कर देता है। वह कमल की सुंदरता से प्रेम करता है। सुंदरता समाप्त होते ही उसका प्रेम भी समाप्त हो जाएगा। इसलिए प्रेम के वशीभूत होकर वह प्राण त्याग देता है।

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः।।

मनुष्य में जन्म के साथ ही स्वाभाविक गुणों का आविर्भाव होता है तथा वे मृत्यु तक उसके साथ रहते हैं। इस संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार कट जाने के बाद भी चंदन वृक्ष की सुगंध समाप्त नहीं होती, वृद्ध होने पर भी हाथी की काम-पिपासा शांत नहीं होती, कोल्हू में पीसने के बाद भी ईख की मिठास नहीं जाती, उसी प्रकार यदि उच्च कुल में जनमा शील-गुण से संपन्न मनुष्य धनहीन हो जाए तो भी उसकी विनम्रता, विनयशीलता और सदाचरण नष्ट नहीं होते। वह विकट परिस्थिति में भी सद्व्यवहार करता है।

सोलहवाँ अध्याय

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्।।

वेद आदि धर्म-शास्त्रें में कहा गया है कि मनुष्य-जीवन अत्यंत दुर्लभ है। अनेक जन्मों के कष्ट भोगने के बाद ही जीवात्मा को मानव योनि में उत्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इसलिए इस जन्म को विषय-वासनाओं में व्यर्थ गँवाने की बजाय मोक्ष-प्राप्ति हेतु इसका उपयोग करना चाहिए और मनुष्य को मोक्ष तभी प्राप्त हो सकता है, जब उसका लोक-परलोक सुधर जाए। इसी उक्ति के संदर्भ में चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक द्वारा लोक-परलोक को सुधारने की बात कही है। वे कहते हैं कि जिसने लोक को सुधारने के लिए पर्याप्त धन का संग्रह नहीं किया, जो सांसारिक मायाजाल से मुक्त होने के लिए ईश्वर-भक्ति नहीं करता, जिसने कभी रति-क्रिया का स्वाद न चखा हो, ऐसे मनुष्य का न तो लोक में भला होता है और न ही परलोक सुधरता है। ऐसे मनुष्य माता के यौवन रूपी वृक्ष को कुल्हाड़े से काटने का कार्य करते हैं। अर्थात् उनके जन्म से न तो माता को सुख प्राप्त होता है और न ही कोई सार्थक श्रेय मिलता है। इसलिए चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को इस लोक में सांसारिक सुखों का यथावत् भोग करना चाहिए; लेकिन साथ ही धार्मिक कार्यों द्वारा परलोक को सुधारने के लिए भी प्रयासरत रहना चाहिए।

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने स्त्रियों की चंचल प्रवृत्ति का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि स्त्रियों का स्वभाव चलायमान होता है। वे बातचीत किसी से करती हैं, लेकिन विलासपूर्वक किसी और का दर्शन करती हैं। उनके मस्तिष्क में किसी का चिंतन चलता है तो मन में वे किसी और की कामना करती हैं। स्त्रियों का प्रेम किसी एक के लिए नहीं होता। इसलिए उनके प्रेमयुक्त व्यवहार को अनुराग नहीं समझना चाहिए।

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी।
स तस्य वशगो भूत्वा नृत्येत् क्रीडा-शकुन्तवत्।।

किसी सुंदर नवयुवती द्वारा स्नेहयुक्त अथवा चंचल व्यवहार करते देख जो यह समझने लगता है कि वह उससे प्रेम करने लगी है, वह मनुष्य शीघ्र ही अपना सर्वस्व खो बैठता है। उसका व्यवहार एक कठपुतली की तरह हो जाता है, जो उस युवती के संकेतों पर नाचता है।

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिण: कस्यापदोऽस्तं गता:
स्त्रीभि: कस्य न खण्डितं भुवि मन: को नाम राज्ञां प्रिय:।
क: कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरासु पतित: क्षेमेण यात: पथि॥

यद्यपि चाणक्य धन के दुष्परिणामों से भली-भाँति अवगत थे, तथापि उन्होंने धन की महत्ता और प्रभाव को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि धन का नशा इतना तीव्र होता है कि उसे पाकर बुद्धि-विवेक से युक्त ज्ञानवान् व्यक्ति भी अहंकार से भर उठता है। इसके लोभ में पड़कर मनुष्य को बार-बार संकटों का सामना करना पड़ता है। इसके मद में चूर होकर ही मनुष्य सुंदर स्त्रियों के संसर्ग में पड़ जाता है। तदनंतर वे कहते हैं कि आज तक ऐसा कोई प्राणी नहीं हुआ, जिसने मृत्यु को जीत लिया हो। न ही भिक्षुक बनकर कोई व्यक्ति सम्मानित हुआ है। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसने दुर्जन व्यक्तियों के कारण संकटों का सामना न किया हो। इसलिए धनरहित होने की अपेक्षा धनयुक्त होना अधिक श्रेयस्कर है।

न निर्मित: केन न दृष्टपूर्व: न श्रूयते हेममय: कुरङ्ग:।
तथाऽपि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धि:॥

बुरे समय में मनुष्य की बुद्धि और विवेक उसका साथ छोड़ जाते हैं। विद्वान् व्यक्ति भी संकट में उलझकर सोचने-समझने की शक्ति खो बैठता है। इसी संदर्भ में चाणक्य उदाहरण देते हुए कहते हैं कि संकट से घिरा मनुष्य उसी प्रकार विवेक-शून्य हो जाता है, जिस प्रकार स्वर्ण-मृग का पीछा करते हुए भगवान् राम हो गए थे। यह जानने के बाद भी कि स्वर्ण-मृग नहीं होते, वे उसे मारने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। अर्थात् बुरे समय में बुद्धिमान लोग भी अनुचित कार्य कर बैठते हैं।

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थित:।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काक: किं गरुडायते॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने श्रेष्ठ गुणों और सच्चरित्र का महत्त्व स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि इन्हीं के कारण साधारण मनुष्य श्रेष्ठता के शिखर की ओर अग्रसर होता है। जिस प्रकार भवन की छत पर बैठने से कौआ गरुड़ नहीं हो जाता, उसी प्रकार ऊँचे आसन पर विराजमान व्यक्ति महान् नहीं होता। महानता के लिए मनुष्य में सद्गुणों एवं सच्चरित्र का होना आवश्यक है। इससे वह नीच कुल में जन्म लेकर भी समाज में मान-सम्मान प्राप्त करता है।

गुणा: सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पद:।
पूर्णेन्दु किं तथा वन्द्यो निष्कलङ्को यता कृश:॥

धन और श्रेष्ठ गुणों में से चाणक्य ने सद्गुणों को अधिक प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण कहा है। वे कहते हैं कि समाज में सद्गुणों द्वारा मनुष्य का सम्मान होता है। इसके लिए प्रचुर धन होना या न होना कोई अर्थ नहीं रखता। जिस प्रकार पूर्णिमा के चाँद के स्थान पर द्वितीया का छोटा चाँद पूजा जाता है, उसी प्रकार सद्गुणों से युक्त मनुष्य

निर्धन एवं नीच कुल से संबंधित होते हुए भी पूजनीय होता है।

पर-प्रोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥

चाणक्य की दृष्टि में ऐसा व्यक्ति अवगुणी होते हुए भी गुणवान् है, जिसकी प्रशंसा उसकी पीठ पीछे भी की जाती है। वे कहते हैं कि मनुष्य के गुणों के कारण ही वह लोगों में प्रशंसनीय स्थान प्राप्त करता है। इसके विपरीत आत्मप्रशंसा करनेवाला व्यक्ति साक्षात् इंद्र ही क्यों न हो, वह उसके अनुरूप सम्मान नहीं प्राप्त कर सकता। अर्थात् जिस मनुष्य की संसार प्रशंसा करता है, वही वास्तव में सम्मान योग्य है।

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम्।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम्॥

जिस प्रकार रत्न स्वर्ण में जड़कर अत्यंत सुंदर हो जाता है, जबकि लोहे में जड़कर शोभाहीन प्रतीत होता है, उसी प्रकार विवेकी मनुष्य का गुणवान् होना अधिक उपयुक्त होता है। विवेक द्वारा वह अपने गुणों का सदुपयोग कर समाज के साथ-साथ अपने कुल का कल्याण भी करता है। इसलिए गुणवान् व्यक्ति का विवेकी होना आवश्यक है।

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते॥

जब तक गुणी एवं विवेकी व्यक्ति को यथोचित स्थान प्राप्त नहीं होता, तब तक वह मूल्यहीन एवं तिरस्कृत रहता है। यह स्थिति भूमि में दबे हीरे की तरह है, जो उचित आश्रय न मिलने के कारण प्रस्तर-तुल्य होता है। जब उसे स्वर्ण में जड़ दिया जाता है, तभी देखनेवाले उसकी प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार उचित स्थान प्राप्त करने के बाद ही किसी गुणी व्यक्ति के गुणों को समाज द्वारा स्वीकारा जाता है।

अतिक्लेशेन य चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते ह्यर्था मा भवन्तु मे॥

पाप-कर्म द्वारा अथवा किसी को कष्ट-क्लेश पहुँचाकर अर्जित किया धन अभिशापित होकर मनुष्य का नाश कर डालता है। इस धन के प्रभाव से सज्जन मनुष्य भी पाप की ओर अग्रसर हो जाते हैं। इसलिए ऐसे धन से बचना चाहिए, अन्यथा शीघ्र ही मनुष्य का उसके कुल सहित नाश हो जाएगा।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या तु वेश्येव सा मान्या पथिकैरपि भुज्यते॥

चाणक्य के दृष्टिकोण में धन उसी स्थिति में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी होता है, जब वह किसी एक व्यक्ति के लिए न होकर संपूर्ण समाज के लिए लाभकारी हो। इसी संदर्भ में वे कहते हैं कि एक व्यक्ति के उपयोग के लिए संचित धन एक कुलवधू की तरह केवल उसी को आनंद प्रदान करता है। इसलिए उसका होना या न होना समाज के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। इसके विपरीत जो धन वेश्या की भाँति नगरवासियों सहित पथिकों को भी संतुष्ट एवं

आनंदित करता है, उसी में धन की उपयोगिता है। इसलिए धन को स्वार्थ हेतु संचित करने के स्थान पर समाज-कल्याण हेतु प्रयोग में लाना चाहिए।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च॥

उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य धन, आयु, स्त्री तथा भोजन-सामग्री से कभी संतुष्ट नहीं होता। ये जितनी भी मिल जाएँ, मनुष्य के लिए अपर्याप्त रहती हैं। मनुष्य अतृप्ति और असंतुष्टि के साथ जन्म लेता है और इन्हीं के साथ संसार से पलायन करता है। तृष्णा का कभी अंत नहीं होता। यह सदैव मनुष्य को अशांत और व्यथित करती है। इसलिए मनुष्य को इससे बचने का प्रयास करना चाहिए।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम्॥

वेद आदि धार्मिक शास्त्रों में अन्न, जल, वस्त्र तथा भूमिदान की महत्ता के साथ-साथ ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि अनेक परम पुण्यमय यज्ञों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। लेकिन चाणक्य कहते हैं कि इनका संबंध केवल कर्म-फल तक सीमित होता है। जैसे ही मनुष्य कर्म-फल प्राप्त कर लेता है, इनका प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत किसी सुपात्र को दिया गया दान कभी निरर्थक नहीं जाता। उसका प्रभाव कर्म-फल की प्राप्ति के बाद भी शाश्वत रहता है। इसलिए दान केवल सुपात्र को देना चाहिए।

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति॥

याचक से सभी डरते हैं सगे-संबंधी, मित्र आदि भी उसका साथ छोड़ देते हैं। अभावग्रस्त की सहायता करने में लोग कतराते हैं। इस कथन को चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक द्वारा अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि संसार में सबसे हलका तिनका होता है, जबकि तिनके से भी हलकी रुई है। लेकिन याचक इन दोनों से हलका होता है। यद्यपि वायु का एक हलका-सा झोंका भी तिनके और रुई को उड़ाकर ले जाता है, परंतु तेज प्रचंड वायु भी याचक को नहीं उड़ा पाती। इसके पीछे का तर्क देते हुए चाणक्य कहते हैं कि याचक कहीं कुछ माँग न बैठे, यही सोचकर वायु भी अपना रुख मोड़ लेती है-अर्थात् याचक सभी द्वारा तिरस्कृत होता है।

वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात्।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभङ्गे दिने दिने॥

चाणक्य ने अपमान को मृत्यु से भी अधिक पीड़ादायक और अहितकारी बताया है। वे कहते हैं कि जीवित रहने की अपेक्षा अपमानित व्यक्ति का मर जाना अधिक उपयुक्त है। अपमानित व्यक्ति क्षण-प्रतिक्षण अपमान का कड़वा घूँट पीता है समाज उसे घृणा की दृष्टि से देखता है सगे-संबंधी एवं मित्र आदि उसके साथ नीच व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि उसकी पत्नी एवं पुत्र आदि भी उससे कतराने लगते हैं। ऐसे जीवन से सम्मानित मृत्यु अधिक सुखमय होती है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

मधुर वचन मन को हर्षित करनेवाले तथा परम सुखदायक होते हैं। मधुर वचन बोलकर मनुष्य शत्रुओं को भी अपना बना सकता है। उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने भी इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य को सदैव मीठे वचन बोलने चाहिए। मृदु वाणी सबको प्रसन्न और आनंदित कर देती है। मीठा बोलने के लिए कुछ व्यय नहीं करना पड़ता। इसलिए कड़वे वचन त्यागकर मीठी बोली अपनाएँ। संसार पर विजय प्राप्त करने का यह अचूक मंत्र है।

संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु सङ्गतिः सुजने जने।।

संसार को कटु वृक्ष के रूप में स्थापित कर चाणक्य कहते हैं कि इस वृक्ष पर सुसंस्कृत भाषा और संतजन की संगति के रूप में दो मीठे और अमृतदायक फल लगते हैं। सुसंस्कृत भाषा द्वारा जहाँ एक ओर सबके हृदयों को जीता जा सकता है, वहीं दूसरी ओर संत-महात्माओं की संगति दुष्टों को भी सज्जन मनुष्य में परिवर्तित कर देती है। इसलिए मनुष्य को इन दोनों फलों का सेवन अवश्य करना चाहिए।

जन्म-जन्मन्यभ्यस्तं यद् दानमधययनं तपः।
तेनैवाऽभ्यासयोगेन तदेवाभ्यस्यते पुनः।।

अच्छे संस्कार पूर्वजन्म से जुड़े होते हैं। दान, विद्या, संयम, शील आदि जैसी अच्छी आदतें अनेक पिछले जन्मों से लगातार चलती हुई भाग्यवश वर्तमान जन्म में भी मिलती हैं। इन सद्गुणों का लाभ उठाकर जीवन सार्थक करना चाहिए।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम्।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने विद्या और धन की महत्ता स्पष्ट की है। वे कहते हैं कि पुस्तकों में वर्णित ज्ञान और दूसरों के पास गया धन आवश्यकता पड़ने पर कभी काम नहीं आता। संकट में केवल वही धन उपयोग में आता है, जो मनुष्य के पास संचित होता है। इसी प्रकार विद्या को व्यवहार में उतारनेवाला विद्यार्थी ही जीवन में उसका उचित लाभ उठा सकता है। इसलिए मनुष्य को संकट के समय के लिए धन का संग्रह अवश्य करना चाहिए। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे अर्जित विद्या को पुस्तकों तक सीमित न रहने दें। जहाँ तक संभव हो सके, जीवन में उसका सदुपयोग करें।

सत्रहवाँ अध्याय

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः।।

किसी भी विद्या को भली-भाँति सीखने तथा उसमें अभ्यस्त होने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो गुरु बिना ज्ञान संभव नहीं है। इसी अति प्राचीन उक्ति का चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक द्वारा समर्थन किया है। उनके अनुसार, गुरु को त्यागने वाला मनुष्य उस अनाचारी स्त्री की तरह होता है, जिसे समाज में तिरस्कृत किया जाता है। पुत्र उत्पन्न करने पर भी वह मातृत्व के गौरव से वंचित रहती है। जो मनुष्य गुरु का आश्रय छोड़कर विद्यार्जन हेतु इधर-उधर भटकता है, यदि वह कहीं से ज्ञान अर्जित कर ले तो भी विद्वानों की सभा में उपहास का पात्र बनता है। ऐसा मनुष्य ज्ञानवान् होकर भी समाज में सम्माननीय नहीं होता।

कृते प्रतिकृतं कुर्याद् हिंसने प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत्।।

'जैसे को तैसा'-चाणक्य इस उक्ति के समर्थक थे। उनका मानना था कि क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होनी चाहिए। अर्थात् एक मनुष्य के साथ दूसरा मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, प्रतिक्रियास्वरूप उसे उस मनुष्य के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। इसे विस्तृत रूप में समझाते हुए चाणक्य कहते हैं कि जो मनुष्य आपके साथ सद्व्यवहार करे, आप भी उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करें। लेकिन जो मनुष्य आपका बुरा करना चाहता है, उसका प्रत्युत्तर बुराई से ही देना चाहिए।

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने श्रम रूपी तप का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जो वस्तु मनुष्य के लिए असाध्य है, उसकी सीमा से परे है, उसे तप अर्थात् अथक परिश्रम करके प्राप्त किया जा सकता है। श्रम की शक्ति असीमित होती है इसके बल पर असंभव भी संभव हो जाता है। इसलिए मनुष्य को परिश्रम से कभी जी नहीं चुराना चाहिए; अपितु जितना संभव हो सके, अथक परिश्रम करके अपने जीवन को सुखमय बनाएँ।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना।।

इस श्लोक में चाणक्य संबोधित करते हुए कहते हैं कि यदि मनुष्य लोभी है तो उसे दुर्जनों की कोई आवश्यकता

नहीं होती, क्योंकि लोभ ही उसका सबसे बड़ा शत्रु होता है, जो उसे नाश की ओर धकेलता है। निंदक एवं चुगलखोर को पातकों से कुछ लेना-देना नहीं होता। निंदा-कर्म करके वे स्वयं पातकों का कार्य संपन्न करते हैं। सत्य से बड़ा कोई तप नहीं होता। सत्य का तेज देह के सभी विकार नष्ट कर डालता है। इसलिए जीवन में सत्य धारण करनेवाले को तप की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि मनुष्य का मन मैला तथा अपवित्र है तो तीर्थ-यात्र करके भी उसका कलुषित हृदय पवित्र नहीं होता। इसके विपरीत जिसका हृदय पवित्र और शुद्ध है, उसे तीर्थ-यात्र की आवश्यकता ही नहीं होती। हृदय में स्नेह हो तो समस्त गुण उसके समक्ष गौण हैं, जबकि यश के समक्ष आभूषणों की चमक भी क्षीण है। विद्या अर्जित करने के बाद मनुष्य जीवन के सत्य को जान लेता है। आत्मा-परमात्मा का भेद तथा ब्रह्म-दर्शन उसके लिए सहज हो जाते हैं। ऐसा मनुष्य सांसारिक मायाजाल से मुक्त हो जाता है। इसलिए उसे विषय-वासनाओं में धकेलनेवाले धन की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार अस्वस्थ व्यक्ति पल-प्रतिपल कष्ट एवं पीड़ा से मरता है। ऐसे व्यक्ति के लिए मृत्यु ही एकमात्र उपचार है। इसलिए उसे मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए।

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा।
शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्नाऽदत्तमुपतिष्ठते॥

शंख (शंखचूड़) और लक्ष्मी-दोनों ही रत्नाकर सागर की संतान माने जाते हैं। लेकिन इसमें से एक धन-वैभव से युक्त होकर संसार में पूजनीय है तो दूसरा साधु-संतों के साथ-साथ भिक्षाटन के लिए भटकता रहता है। ऐश्वर्य-वैभव से युक्त लक्ष्मी का भाई होने के कारण भी शंख निर्धन एवं संसार से विरक्त साधुओं के साथ भिक्षा माँगता है। दान-दक्षिणा रहित जीवनयापन के कारण ही मृत्यु उपरांत शंख को याचक बनना पड़ा। इसलिए चाणक्य सचेत करते हुए कहते हैं कि अपनी विद्वत्ता को सार्थक बनाए रखने के लिए मनुष्य को यथासंभव दान करते रहना चाहिए। इससे लोक और परलोक में उसका भला होता है।

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता॥

मनुष्य का स्वभाव आकाश में उड़ते पक्षी के समान होता है। लेकिन पंख न होने की विवशता उसे जमीन पर चलने के लिए बाध्य कर देती है। इसी विवशता को चाणक्य ने मनुष्य के लिए उपयोगी माना है। वे कहते हैं कि विवशता मनुष्य और उसके आचरण को पथभ्रष्ट होने से रोकती है। शक्ति का अभाव मनुष्य को ब्रह्मचारी बनने के लिए विवश कर देता है धन का अभाव मनुष्य को साधु-संत तथा रोगग्रस्त को ईश्वर-भक्त बना देता है। वृद्धावस्था की विवशता से ही स्त्री पतिव्रता बन जाती है। इसी संदर्भ में चाणक्य आगे कहते हैं कि यदि मनुष्य बिना विवश हुए ऐसा आचरण अपनाए तो उसकी महत्ता और बढ़ जाएगी।

नाऽन्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा।
न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुः परं दैवतम्॥

चाणक्य ने दान को सबसे उत्तम और परम कल्याणकारी कहा है। लेकिन इसमें भी वे अन्न और जल के दान को अधिक उपयुक्त और श्रेष्ठ फलदायक मानते हैं। वे कहते हैं कि भूखे को भोजन करवाना और प्यासे को जल पिलाना परम पुण्यदायक है। इसलिए धन की अपेक्षा मनुष्य को अन्न-जल का अधिक दान करना चाहिए। धार्मिक शास्त्रें का अनुसरण करते हुए चाणक्य ने भी द्वादशी की तिथि की महिमा स्वीकार की है। उनके अनुसार, इस दिन किया गया व्रत-जप-तप-दान श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाला होता है। इसी प्रकार मंत्रें में वे गायत्री मंत्र को सर्वश्रेष्ठ और समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला मानते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य को नित्य गायत्री मंत्र का जाप अवश्य करना चाहिए। इससे जीवन की समस्त बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं।

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायास्तु मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम्॥

उपर्युक्त श्लोक में चाणक्य ने दुर्जन व्यक्ति की तुलना विषैले जीवों से की है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार सर्प, मधुमक्खी तथा बिच्छू विष से युक्त होते हैं, उसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति भी भयंकर विष से परिपूर्ण होता है। अंतर केवल इतना है कि सर्प का विष उसके दाँत में, मधुमक्खी का मस्तक में तथा बिच्छू का पूँछ में होता है जबकि दुर्जन व्यक्ति की संपूर्ण देह विषयुक्त होती है। उसके संपर्क में आनेवाला कोई भी व्यक्ति उसके दुष्प्रभाव से बच नहीं सकता। इसलिए मनुष्य को दुर्जन से दूर रहना चाहिए।

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारिणी।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥

पति-आज्ञा और पतिव्रता धर्म को चाणक्य ने स्त्रियों का आभूषण कहा है। वे कहते हैं कि जो स्त्री पति की छोटी-से-छोटी आज्ञा का भी पालन करती है, उसका लोक-परलोक सुधर जाता है। इसके विपरीत यदि वह पति की आज्ञा के बिना व्रत-उपवास आदि भी करती है तो पति की अकाल मृत्यु का कारण बनती है। ऐसी स्त्रियों को मृत्यु के बाद नरक की घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इसलिए पत्नी को पति की आज्ञा और पतिव्रता धर्म—दोनों का यथावत् पालन करना चाहिए; यही पत्नी-धर्म है।

दानैः शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि।
तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा॥

पति-सेवा समस्त शुभ कर्मों से बढ़कर होती है। इसी बात को चाणक्य ने उपर्युक्त श्लोक में स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि जो स्त्री पतिव्रता-धर्म का पालन करते हुए पति-सेवा में निरंतर लीन रहती है, उसे दान, व्रत, तीर्थ-यात्र तथा पवित्र नदियों में स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वस्तुतः पति-सेवा रूपी तप में स्वयं को समर्पित कर वह परम पवित्र हो जाती है।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन॥

इस श्लोक द्वारा चाणक्य ने मनुष्य को बाह्य आडंबरों को त्यागकर आत्म-संतुष्टि के लिए प्रेरित किया है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार हाथ की शोभा आभूषण, कंगन आदि धारण करने से नहीं अपितु दान करने से बढ़ती है चंदन के लेप की अपेक्षा स्नान द्वारा शरीर की शुद्धि होती है; मानसिक तृप्ति भोजन में नहीं अपितु मान-सम्मान में निहित होती है तथा मोक्ष की प्राप्ति तिलक लगाने या भगवे वस्त्र धारण करने की अपेक्षा ज्ञान से होती है, ठीक उसी प्रकार बाहरी दिखावे या विषय-वासनाओं में डूबने से मन शांत और पवित्र नहीं होता, इसके लिए आंतरिक संतुष्टि आवश्यक है। और यह केवल परोपकार, सहृदयता, सच्चरित्रता एवं दान में निहित होती है।

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम्।
आत्मरूपं जले पश्यन् शक्रस्यापि श्रियं हरेत्।।

जो मनुष्य नाई के घर जाकर हजामत बनवाते हैं, पत्थर की देव-प्रतिमाओं पर चंदन का लेप लगाते हैं या जल में अपनी परछाईं देखते हैं, चाणक्य ने उन्हें ज्ञानवान् होते हुए भी बुद्धिहीन कहा है। उनके अनुसार, ऐसे व्यक्ति अपने मान-सम्मान को स्वयं ही नष्ट कर डालते हैं।

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः।।

इस श्लोक द्वारा चाणक्य कहते हैं कि जिस प्रकार तुंडी (मादक फल) का सेवन बुद्धि का नाश करता है तथा वचा (बच) बुद्धि का विकास करती है, उसी प्रकार नारी मनुष्य की शक्ति हरण करती है तथा दूध का सेवन शक्ति में वृद्धि करता है। इसलिए मनुष्य को नारी के साथ अनावश्यक या अत्यधिक संसर्ग से बचना चाहिए।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे।।

चाणक्य के अनुसार मनुष्य को परोपकार की भावना से परिपूर्ण होना चाहिए। परोपकार में ही मनुष्य का आत्म-कल्याण निहित होता है। जिनका हृदय परोपकार से भरा हुआ है, उन्हें कभी विपत्तियों का सामना नहीं करना पड़ता। उनके मार्ग की समस्त बाधाएँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं और वे कदम-कदम पर सफलता प्राप्त करते हैं। परोपकार से युक्त मनुष्य दुःखरहित होकर सुखमय जीवन व्यतीत करता है। इसलिए मनुष्य को यथासंभव परोपकार करते रहना चाहिए।

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः।
यदि तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्।।

सदाचारिणी एवं पतिव्रता पत्नी, सद्गुणों से युक्त पुत्र-पौत्र तथा आवश्यकताएँ पूर्ण करने हेतु पर्याप्त धन—मनुष्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिए चाणक्य ने उपर्युक्त तीनों को महत्त्वपूर्ण माना है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य को ये तीनों चीजें मिल जाएँ तो उसके लिए उसका घर ही स्वर्ग के समान हो जाएगा। फिर उसे किसी और स्वर्ग की कोई इच्छा नहीं रहेगी।

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।

संसार के सभी जीवों की तरह मनुष्य भी उदर-पोषण, भय, निद्रा, संभोग तथा संतानोत्पत्ति की क्रियाएँ करता है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो पशुओं और मनुष्य में शारीरिक संरचना के अतिरिक्त कोई विशेष अंतर नहीं होता। लेकिन केवल आचरण ही मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ सिद्ध करता है। इसमें भी धर्माचारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जो

धर्म-कर्म और नैतिक गुणों से युक्त है, वास्तव में वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। इसके विपरीत इनसे रिक्त मनुष्य पशु-तुल्य होता है।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्
दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति॥

जिस प्रकार बुद्धिहीन हाथी द्वारा मद की कामना से आए भौंरों को अपने कानों की चोट से उड़ा देने पर भौंरों को कोई फर्क नहीं पड़ता, वे पुनः कमल-वन में चले जाते हैं, जबकि हाथी के गंडस्थल (हाथी का ललाट) की शोभा नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यदि कोई दुर्जन किसी याचक को भगा दे तो इससे याचक को कोई फर्क नहीं पड़ता। वह किसी और घर से भिक्षा प्राप्त कर लेता है। लेकिन तिरस्कृत याचक पुनः दुर्जन के पास नहीं जाता। इससे उसका यश कलंकित होता है। इसलिए मनुष्य को ऐसी प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

राजा वेश्या यमो ह्यग्निस्तस्करो बालयाचकौ।
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः॥

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, तस्कर, बालक, याचक और ग्राम कंटक (गाँववासियों को परेशान करनेवाले) इन आठ प्राणियों का वर्णन करते हुए चाणक्य कहते हैं कि ये आठों दूसरे मनुष्य के दुःख एवं संताप को नहीं जानते। इनकी प्रवृत्ति अपने मन के अनुसार कार्य करने की होती है। इसलिए मनुष्य को इनसे दया की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम्॥

मनुष्य को कभी किसी असहाय एवं पीड़ित व्यक्ति का उपहास नहीं उड़ाना चाहिए, क्योंकि यह स्थिति उसके साथ भी घटित हो सकती है। इस कथन को उपर्युक्त श्लोक द्वारा चाणक्य ने स्पष्ट किया है। एक उद्दंड युवक ने हँसते हुए एक वृद्धा से पूछा कि 'हे बाले! तुम नीचे क्या ढूँढ़ रही हो?' उसके व्यंग्य भरे स्वर को सुनकर वृद्धा ने कहा कि 'इस बुढ़ापे के कारण मेरा यौवन रूपी मोती नीचे गिर गया है, मैं उसे ही ढूँढ़ रही हूँ।' इस संदर्भ में चाणक्य कहते हैं कि मनुष्य को एक-न-एक दिन अवश्य वृद्धावस्था झेलनी पड़ती है। इसलिए किसी दूसरे का उपहास उड़ाने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना चाहिए।

व्यालाश्रयाऽपि विफलापि सकण्टकाऽपि
वक्राऽपि पङ्किल भवाऽपि दुरासदापि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोर
एको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान्।।

कभी-कभी अनेक अवगुणों पर एक गुण भी भारी पड़ जाता है। केवल एक गुण के कारण ही अवगुणी होते हुए भी मनुष्य समाज में मान-सम्मान प्राप्त कर लेता है। इस संदर्भ में चाणक्य केतकी (केवड़े) का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि केतकी के वृक्ष पर सर्प निवास करते हैं, उसकी संरचना टेढ़ी-मेढ़ी होती है तथा कीचड़ ही उसका निवास-स्थान है लेकिन फिर भी वह अपनी सुगंध से समस्त मनुष्यों को वशीभूत कर लेती है। केवल एक यही गुण उसके समस्त अवगुणों को छिपा लेता है, इसी प्रकार भले ही मनुष्य दुर्जनों की संगति करता हो भयानक एवं कुरूप हो या नीच कुल में जनमा हो लेकिन यदि उसमें बुद्धि-विवेक का गुण है तो वह अवगुणों से युक्त होते हुए भी विद्वानों की सभा में सम्मानित होता है।

Published by

Prabhat Prakashan

4/19 Asaf Ali Road,

New Delhi-110 002 (INDIA)

e-mail: prabhatbooks@gmail.com

ISBN 978-93-5048-904-8

Chanakya Neeti

by Granth Akademi

Edition

First, 2014